सी आइ टी यू के नीति संबंधी दस्तावेज़ 2001

- साम्राज्यवाद के विचारधारक हमले
- साम्राज्यवाद के आर्थिक हमले
- साम्प्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष
- जातिवाद तथा सामाजिक उत्पीड़न
- अनौपचारिक क्षेत्र तथा श्रमिक आंदोलन के समक्ष चुनौतियां
- बेरोजगारी तथा श्रमिक संगठन
- कामकाजी महिलाएं: एक वर्गीय दृष्टिकोण

सीटू प्रकाशन

हमारी बात

हैदराबाद में 27 से 31 दिसम्बर, 2000 तक आयोजित भारतीय ट्रेड यूनियन केन्द्र के दसवें महाधिवेशन में एक पूरा दिन सात अलग-अलग विषयों पर गठित कमिशनों में बहस पर लगाया गया था। ये कमिशन श्रमिक वर्ग तथा श्रमिक आंदोलन के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण विषयों को लेकर बनाए गए थे। इन कमिशनों में प्रस्तुत किये गए नीति सम्बन्धी वक्तव्यों पर सहभागी साथियों ने गहन विचार विमर्श किया और अपने-अपने अनुभवों से इनकी अन्तर्वस्तु को और अधिक समृद्ध बनाया है। सहभागी साथियों की टिप्पणियों तथा सुझावों पर विचार विमर्श करने के पश्चात् इन वक्तव्यों को अंतिम रूप दिया गया जिन्हें अब इन्हें पुस्तक के रूप प्रकाशित किया जा रहा है।

क्योंकि इस पुस्तक में उल्लिखित विषयों का सम्बन्ध नीतिगत मामलों से है इसलिए इन नीतिगत मामलों को उन चुनौतियों के संदर्भ में देखा जाना चाहिये जिनका सामना आज भारत में श्रमिक वर्ग तथा श्रमिक आंदोलन को करना पड़ रहा है। अत: इस पुस्तक का नाम सी आइ टी यू के नीति सम्बन्धी दस्तावेज-2001 रखा गया है। ये दस्तावेज इन मुद्दों पर सी आइ टी यू द्वारा अपनाए गए सैद्धांतिक रुख को प्रतिबिम्बित करते हैं और विभिन्न चुनौतियों का सामना करने के लिये हमारी भावी कार्य विधि क्या होगी, इसकी दिशा का निर्धारण करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस नीति सम्बन्धी दस्तावेज को तैयार करने का उद्देश्य इन विषयों पर और अधिक गहन अध्ययन करना तथा सी आइ टी यू संगठन के प्रत्येक स्तर पर विचार विमर्श करना है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि सी आइ टी यू की समितियां तथा सम्बद्ध श्रमिक संघ इस प्रकाशन से लाभान्वित होंगे। सी आइ टी यू की अनेक राज्य समितियों ने इन विषयों में गहरी रुचि ली है और उन राज्यों के प्रतिनिधि इनसे लाभ उठा सकें इसलिये उन्होंने महाधिवेशन में प्रस्तुत किये गए इन वक्तव्यों के प्रारूपों का प्रकाशन अपने-अपने राज्यों की भाषाओं में कराया था। हमारा सुझाव है कि सभी राज्य समितियां इस नीति सम्बन्धी दस्तावेज़ का प्रकाशन उसके अंतिम रूप में अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषाओं में कराने की योजना बनाएं ताकि पूरे देश के ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं तथा श्रमिकों के मध्य सी आइ टी यू की नीतियों का व्यापक प्रचार एवं प्रसार हो सके।

हमारी अपेक्षा है कि सी आइ टी यू के मित्रवत संगठनों के लिये भी यह दस्तावेज लाभदायक होगा, उनकी नीतियों के अनुकूल होगा तथा दिन-प्रतिदिन की ट्रेड यूनियन गतिविधियों में उनके काम आएगा।

31 मार्च, 2001

एम के पन्धे
महासचिव
सी आइ टी यू

विषय सूची

	पृष्ठ
❐ साम्राज्यवाद के विचारधारक हमले	5
❐ साम्राज्यवाद के आर्थिक हमले	19
❐ साम्प्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष	41
❐ जातिवाद तथा सामाजिक उत्पीड़न	55
❐ अनौपचारिक क्षेत्र तथा श्रमिक आंदोलन के समक्ष चुनौतियां	67
❐ बेरोजगारी तथा श्रमिक संगठन	77
❐ कामकाजी महिलाएं: एक वर्गीय दृष्टिकोण	96

साम्राज्यवाद के विचारधारक हमले

प्रस्तावना

अस्सी के दशक के अंतिम भाग में सोवियत संघ के विखण्डन तथा पूर्वी युरोपीय देशों में समाजवाद का पराभव होने के दुष्परिणामस्वरूप विश्व के श्रमिक आंदोलन को गहरे झटके लगे थे। अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवाद को इन घटनाओं के फलस्वरूप लाभ हुआ, भले ही यह लाभ अस्थायी रूप से क्यों न हुआ हो। उसने इस स्थिति का उपयोग अपने हमलों के लिये किया। उसने विश्वव्यापी स्तर पर अपनी दादागिरी स्थापित करने के लिये भूमण्डलीयकरण का अपना अभियान शुरू कर दिया था।

साम्राज्यवाद ने तृतीय विश्व के देशों के अपने निष्ठुर उत्पीड़न एवं शोषण को तेज कर दिया है और इसके लिये वह अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन जैसे संस्थानों का खुल कर उपयोग कर रहा है। एकल ध्रुवीय विश्व में साम्राज्यवाद ने व्यापक स्तर पर समाजवाद के विरुद्ध अपना यह तूफानी प्रचार तेज कर दिया है कि समाजवाद मर चुका है और पूंजीवाद ही मानव समाज के विकास का अंतिम चरण है।

प्रारम्भ में यह स्मरण करना आवश्यक होगा कि सी आइ टी यू ने अपने संविधान में समाजवादी राज्य की स्थापना को अपना लक्ष्य बनाया है। वैज्ञानिक समाजवाद के आदर्शों पर दृढ़ रहते हुए सी आइ टी यू सभी प्रकार के शोषण एवं उत्पीड़न से समाज की पूर्ण मुक्ति चाहता है।

सोवियत संघ तथा पूर्वी युरोपीय देशों में लगे धक्के समाजवाद के निर्माण में हुई गलतियों का परिणाम थे। ये धक्के समाजवाद के वैज्ञानिक सिद्धान्तों की वैधता का निषेध नहीं करते।

सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों की उपलब्धियां प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण थीं। उन्होंने अपने यहां दरिद्रता, निरक्षरता तथा पिछड़ेपन का नाश किया

था, उन्होंने काम का अधिकार दिया था और बेरोजगारी दूर की थी, उन्होंने सभी उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों को कम किया था और उन्हें नियंत्रण में रखा था, उन्होंने लोगों को शिक्षा, स्वस्थ्य की देखभाल, आवास की सुविधाएं उपलब्ध कराई थीं और सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याण की अन्य कार्रवाईयां की थीं। उन्होंने ये उपलब्धियां साम्राज्यवाद द्वारा निरंतर हमले किये जाने पर भी प्राप्त कीं। तथापि, इन उपलब्धियों के कारण ही पूंजीवादी देशों को भी अपने श्रमिकों के लिये थोड़ी-बहुत सामाजिक सुरक्षा प्रदान करनी पड़ी थी।

वर्तमान में समाजवादी व्यवस्था वाले देशों अर्थात् चीन, क्यूबा, कोरिया, लाओस तथा वियतनाम समाजवादी व्यवस्था की प्रभावकारिता तथा मानवता की मूलभूत समस्याओं का स्थायी समाधान करने वाली देदीप्यमान उदाहरणें बने हुए हैं।

अब भी समाजवाद के निर्माण की प्रक्रिया दीर्घकालिक बनी हुई है और समाजवाद के लिये संघर्ष लम्बा एवं सघन होगा।

वर्तमान में पूर्व समाजवादी देशों के लाखों-लाख लोग आजीविका के साधनों से वंचित हो चुके हैं, आज वहां बेरोजगारी, दरिद्रता, भूख तथा कष्ट हैं किन्तु समाजवादी व्यवस्था में ये सभी अभिशाप नहीं थे, कोई इन्हें जानता तक नहीं था। समाजवाद का विध्वंस ''लोकतंत्र'' के तूफानी प्रचार के अन्तर्गत किया गया था। वह ''लोकतंत्र'' अर्थहीन सिद्ध हुआ है और वर्तमान पीढ़ी के सामने साम्राज्यवाद की विचारधारक माया की पोल खुल चुकी है।

यहीं पर बस नहीं, वर्तमान में पूंजीवादी विश्व में घटने वाली घटनाएं इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि विश्व पूंजीवाद मानवता की मूलभूत समस्याओं का समाधान करने में सक्षम नहीं है। पूंजीवादी व्यवस्था बेरोजगारी का जड़मूल से नाश नहीं कर सकती। वह केवल ''भाग्यवानों'' (पूंजीपति वर्ग) तथा ''अभागों'' (सर्वहारा वर्ग) के मध्य और विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य आय एवं सम्पत्ति की असमानता को बढ़ा सकती है। यह समाज व्यवस्था निरंतर संकट ग्रस्त बनी रहेगी।

अत: वर्गीय शक्तियों का साम्राज्यवाद के पक्ष में वर्तमान झुकाव अस्थायी है। श्रमिक वर्ग द्वारा अपने वर्गीय संघर्ष के द्वारा इसका पांसा अपने पक्ष में बदल दिया जाएगा अथवा बदला जा सकता है।

भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था का विदेशी/बहुराष्ट्रीयकरण

सोवियत संघ का पराभव होने तथा पूर्वी युरोपीय देशों में समाजवाद को धक्के लगने के पश्चात् भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था की रूपरेखा में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी देश भूमण्डलीयकृत आर्थिक सत्ता के अन्तर्गत तथाकथित ''नयी विश्व व्यवस्था'' पर बल देने लगे हैं।

साम्राज्यवादी प्रचार करते हैं कि ''विदेशी/बहुराष्ट्रीयकृत भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था जीवन का एक ऐसा तथ्य है जिसे बदला नहीं जा सकता।'' सम्पूर्ण विश्व एक भूमण्डलीय गांव बन गया है और प्रत्येक देश इसके साथ जुड़ चुका है। कोई भी देश जुड़ाव अथवा एकीकरण की इस प्रक्रिया से अलग-थलग नहीं रह सकता। इसलिये सभी देशों को भूमण्डलीय अखण्डता को दृष्टि में रखते हुए अपने-अपने विकास की प्राथमिकताओं को पुनर्समायोजित करना चाहिये। वस्तुओं तथा पूंजी के मुक्त प्रवाह और बाजार की शक्तियों के बेरोकटोक काम करने के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति के सृजन की गति तेज होगी जिसका लाभ सभी सम्बन्धित पक्षों को मिलेगा।

इन नव-उदारवादी विचारकों के अनुसार ''राज्य को बाजार की शक्तियों के इस प्रकार के कार्यों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से आर्थिक तथा विकास की सभी गतिविधियों से पीछे हट जाना चाहिये जिनमें वितरणकारी पक्ष भी सम्मिलित हैं। सार्वजनिक क्षेत्र का पूर्णरूपेण निजीकरण कर देना चाहिये और आर्थिक एवं वित्तीय कार्रवाईयों की मानिटरिंग करने वाले एवं नियामक तंत्र को समाप्त कर देना चाहिये।'' वे लोग यह प्रचार भी करते हैं कि ''सार्वजनिक क्षेत्र का अर्थ अकुशलता एवं अदक्षता है जबकि निजी क्षेत्र प्रतिस्पर्धा तथा कार्य दक्षता को सुनिश्चित बनाता है और इस प्रकार अधिक विकास एवं प्रगति होती है। वे यह भी कहते हैं कि भूमण्डलीयकृत अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र के लिये आधारभूत उद्योगों का आरक्षण और उद्योगों के छोटे एवं लघु क्षेत्रों द्वारा उत्पादन के लिये वस्तुओं के आरक्षण कोई अर्थ नहीं रह जाता। इसका निहितार्थ यह है कि समृद्ध तथा निर्धन सभी देशों को नव-उदार भूमण्डलीयकरण के इस स्वरूप से लाभ होगा। इसलिये विश्व का जनगण भी स्वयंमेव इससे लाभान्वित होगा। इसके साथ ही प्रतिस्पर्धी वातावरण अच्छी गुणवत्ता वाली वस्तुओं की सस्ते मूल्यों पर उपलब्धता को सुनिश्चित बनाएगा।''

इस प्रकार की सिद्धान्तवादिता (अथवा प्रस्तुतिकरण) साम्राज्यवादी शक्तियों

तथा भूमण्डलीय वित्तीय पूंजी की धोखादेही के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसका उद्देश्य वि-उद्योगीकरण के माध्यम से विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर अपनी पकड़ को और मजबूत करना तथा उनके बाजारों को हड़प लेना है।

भूमण्डलीयकरण का वास्तविक स्वरूप

जनता तथा श्रमिक वर्ग में भ्रांतियां उत्पन्न करने के लिये यह भी कहा जाता है, ''यह साम्राज्यवादी भूमण्डलीयकरण भाग्य विधाता है, इसका क्षेत्र अति-व्यापक है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती और इसलिये उन्हें इसके विरुद्ध जारी संघर्षों से दूर रहना चाहिये। कोई भी सुधार केवल सुधारों के द्वारा ही लाया जा सकता है। समाजवाद के लिये संघर्ष करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि भूमण्डलीयकृत पूंजीवादी संरचना के भीतर ही उनकी सभी समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है। भूमण्डलीयकरण अपने मानवीय स्वरूप के साथ जन साधारण के कल्याण की चिंता करेगा।'' इस प्रकार की भ्रांतियां फैलाई जा रही हैं।

फीदेल कास्त्रो ने वर्तमान में जारी नव उदार भूमण्डलीयकरण के वास्तविक स्वरूप पर टिप्पणी करते समय कहा था: ''मेरा मानना है कि समस्या भूमण्डलीयकरण की नहीं वरन भूमण्डलीयकरण के प्रकार की है... ...भूमण्डलीयकरण ने नव उदारवाद के ढांचों को अपना कर अपना लौह पाश और कस लिया है, अत: यह विकास नहीं अपितु दरिद्रता ही है जिसका फैलाव भूमण्डलीय स्तर पर होता है, यह हमारे राज्यों की राष्ट्रीय सम्प्रभुता के लिये आदर नहीं अपितु उनके सम्मान का हनन है, यह हमारे लोगों के मध्य एकजुटता नहीं अपितु बाजार में चल रही असमान प्रतिस्पर्धा है।''

कठोर वास्तविकताएं

पिछले एक दशक में विकासशील देशों के अनुभव ने नि:संदेह प्रमाणित कर दिया है कि आर्थिक उदारीकरण के दर्शन का प्रत्येक पक्ष पूर्णरूपेण छलावा मात्र है। इसका स्वर्ग क्या है ? उत्पादन क्षमताओं में अपार वृद्धि होने और प्रौद्योगिकीय क्रांति होने पर भी विश्व व्यापी स्तर पर और देशों के भीतर भी असमानताओं की खाई गहरी होती चली जा रही है। गरीबी, मूल्य वृद्धि, तथा बेरोजगारी की स्थिति बिगड़ती चली जा रही है, जनता के अपार कष्टों, निरक्षरता, उद्योगों की बीमारी एवं कामबंदी ने साम्राज्यवादी शक्तियों की बलात्कारी लूट की पोल खोल कर रख दी है। परमाणु विस्फोटों के खतरों, पारिस्थितिकीय असंतुलनों, नैतिक मूल्यों के ह्रास, लिंग (यौन)एवं जातिगत पक्षपांत इत्यादि अभिशापों के लिये यही प्रत्यक्ष रूप से

उत्तरदायी है। यही विकृतियां मानवीय जीवन के श्रेष्ठ गुणों का निरंतर क्षरण करती चली जा रही हैं। जहां ये शक्तियां लोकतंत्र की बातें करती हैं वहीं पर वे आर्थिक तथा राजनीतिक दोनों ही मोर्चों पर विकासशील देशों के सम्प्रभुता सम्पन्न अधिकारों के लिये निश्चित रूप से खतरा उत्पन्न कर रही हैं।

एक बार पुन: हम फीदेल कास्त्रो को उद्धृत करेंगे, उन्होंने हवाना में 12-4-2000 को जी-77 देशों के शिखर सम्मेलन में भाषण करते समय कहा था, ''पहले कभी भी मानवता के पास इतनी अपराजेय वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकीय सम्भावनाएं एवं शक्ति, इतनी असाधारण क्षमता जो समृद्धि ला सके तथा जो कल्याणकारी हो, कदापि नहीं थी, किन्तु इसके साथ ही इतनी अधिक गहरी असमानता एवं विषमता भी नहीं थी जितनी आज विश्व में है।''

पूंजीवाद, सबसे बड़ी रुकावट

आज विश्व पूंजीवाद के विचारधारात्मक हमले वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय क्रांति के लाभों को विश्व के करोड़ों लोगों तक पहुंचाने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा बने हुए हैं। वर्तमान युग की भूमण्डलीयकृत अर्थव्यवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी सट्टाबाजार के तत्काल मिलने वाले लाभों की खोज में है, वह चाहती है कि सभी देशों के बाजारों में पहुंचने क उसके मार्ग में कोई बाधा नहीं रहे ताकि वह अपने यहां संकटग्रस्त पूंजीवादी व्यवस्था को बनाए रखे।

मार्क्स तथा एंगेल्स ने वर्ष 1848 में कम्युनिस्ट घोषणा पत्र की रचना की थी। उसमें उन्होंने लिखा था: ''भूमण्डल के सभी भागों में अपने उत्पादों के लिये बुर्जुआजी को बाजार का निरंतर प्रसार करने की आवश्यकता होती है। उसे सर्वत्र बस जाना होता है, उसे सर्वत्र स्थापित होना होता है और उसे सर्वत्र अपने सम्पर्क बनाने होते हैं...उसने उद्योगों के पावों तले उसकी राष्ट्रीय भूमि जिस पर वे खड़े थे, को खिसका दिया। सभी पुराने स्थापित राष्ट्रीय उद्योगों को बर्बाद कर दिया गया अथवा उन्हें प्रतिदिन निर्ममता पूर्वक बर्बाद किया जाता है। सभी सभ्य राष्ट्रों तथा श्रमिक वर्ग के लिये यह जीवन और मृत्यु का प्रश्न बन गया है।'' इस पैरे में वर्तमान में घट रही घटनाओं का सजीव चित्रण किया गया है, मानों इसे अभी लिखा गया हो।

पिछला दशक भारत सहित सभी विकासशील देशों में निरंतर चहुंमुखी गिरावट और उसके साथ-साथ कल तक के तथाकथित ''शेरों'' की अर्थ-व्यवस्थाओं की भीषण दुर्बलताओं को दर्शाता है। पूंजीवादी श्रेणी ने कुछ विशेष क्षेत्रों/अंचलों में

जो भी थोड़ी बहुत प्रगति हुई है, उसके लाभों को पूर्णतया हड़प लिया है। उनका जन साधारण के लिये कोई अर्थ नहीं रह जाता। रोजगारहीन विकास के परिदृश्य की पृष्ठभूमि में जनसाधारण को थोड़ा लाभ भी नहीं मिल रहा है।

यह परिदृश्य उस झूठे दावे की पोल भी खोल देता है कि केवल बाजार की शक्ति ही वितरण की गुणवत्ता को सुनिश्चित बना सकती है। वास्तविकता तो यह है कि जन साधारण को उस समय तक प्रगति का थोड़ा या बहुत लाभ पहुंचाया नहीं जा सकता जब तक उसके लिये जागरूक प्रयास नहीं किये जाएंगे, एक्विटी-उन्मुखी नीतिगत सहायता जन साधारण को प्रदान नहीं की जाएगी और आर्थिक मामलों में राज्य/राष्ट्र का हस्तक्षेप नहीं रहेगा। पूंजीवादी व्यवस्था वितरण की इस गुणवत्ता को बनाए नहीं रख सकती और न ही इसे सुनिश्चित बना सकती है।

इन कठोर वास्तविकताओं के होने पर भी बुद्धिजीवी वर्ग तथा जन साधारण का एक बड़ा भाग साम्राज्यवादी मीडिया के विश्वव्यापी तूफानी हमले तथा प्रचार के प्रभाव में आ गया है और भ्रांतियों का शिकार हो चुका है। नव-उदार भूमण्डलीयकरण इन्हीं भ्रांतियों एवं उनसे उपजी अनिश्चितताओं से शक्ति प्राप्त करता है और उसी शक्ति के बल पर वह श्रमिक वर्ग के प्रतिरोध एवं संघर्ष को क्षीण बना देना चाहता है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का मिथक

साम्राज्यवादी भूमण्डलीयकरण के सिद्धान्तकार विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के आगामी आर्थिक विकास के लिये एकमात्र साधन के रूप में ''प्रत्यक्ष विदेशी निवेश'' का प्रस्तुतिकरण कर रहे हैं। इसके चलते जनता की उस श्रेणी में भी भ्रांतियां उत्पन्न हो गई हैं जो सामान्यतया उदारीकृत नीतिगत सत्ता के आलोचक हैं। वे लोग यह बात समझ नहीं पा रहे कि अकेला प्रत्यक्ष विदेशी निवेश देश के आत्मनिर्भर विकास के लिये निवेश का एकमात्र स्रोत नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने के चक्कर में स्वदेशी निवेश की सम्भावनाओं को ही समाप्त किया जा रहा है, भारत में भी यही किया जा रहा है जो देश के लिये आत्मघाती प्रयास है। चीन जैसे इक्का-दुक्का अपवादों को छोड़ कर लगभग सभी विकासशील देशों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिये धन अधिकतर स्वदेशी कम्पनियों के अधिग्रहण अथवा उन्हें बाजार से निकाल बाहर किये जाने के फलस्वरूप आया है। इसके चलते निवेशों के अन्तर्वाह की अपेक्षा संसाधनों का बहिर्वाह अधिक हुआ है। यह धन आयातों तथा विदेशी मुद्रा बाहर ले जाने के लिये कहीं अधिक उपयोग

में लाया गया है और इसके विपरीत निर्यातों में इसका योगदान बहुत कम रहा है। इस प्रत्यक्ष विदेशी निवेश ने देश में नये रोजगारों का सृजन करने की अपेक्षा व्यापक स्तर पर रोजगारों की हत्याएं करने का काम किया है। विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा अंकटाड जैसे संगठनों के दस्तावेज भी इसी कठोर वास्तविकता की पुष्टि करते हैं।

बहुपक्षीय संस्थान तथा सामाजिक अनुच्छेद

साम्राज्यवाद के विचारधारात्मक हमलों ने नव-उदार भूमण्डलीयकरण के विभिन्न अभिकरणों की भूमिका तथा प्रकृति के सम्बन्ध में एक और दोषपूर्ण समझ को जन्म दिया है। विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व-व्यापार संगठन का लोकतंत्रीकरण करने की बड़ी-बड़ी डींगें हांकी जाती हैं, श्रमिक आंदोलन की कुछेक श्रेणियां भी इसी मनोभावना का प्रदर्शन कर रही हैं। विश्व व्यापार संगठन में समान दर्जा तथा मताधिकार दिये जाने पर भी साम्राज्यवाद के बाहुबल तथा हथकण्डों के चलते, विकासशील देशों को कोई राहत नहीं मिलती। इन संस्थानों में साम्राज्यवादी शक्तियों का बर्चस्व है और इन्हें उनके शस्त्र अथवा उपकरणों के रूप में ही अस्तित्व में लाया गया है ताकि वे (साम्राज्यवादी) इनका उपयोग करके विश्व को आर्थिक दृष्टि से अपना दास बना सके। यह तथ्य अपने स्थान पर बना हुआ है। इसलिये इन संस्थानों की प्रकृति भी घोर विकास विरोधी तथा घोर जन-विरोधी है।

साम्राज्यवादी शिविर इसी ढंग से ''सामाजिक अनुच्छेद'' को विश्व-व्यापार संगठन के समझौते में जोड़ना चाहता है, वह इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विकासशील देशों पर अपने यहां ''श्रम सम्बन्धी न्यूनतम मानकों'' का पालन करने सम्बन्धी पूर्व शर्त थोंप रहा है। वे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन को भी इस प्रक्रिया में सम्मिलित करने के प्रयास कर रहे हैं। यह कार्रवाई विकासशील देशों से निर्यातों पर नान-टैरिफ अवरोध खड़े करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। साम्राज्यवादी देशों को विकासशील देशों में श्रम-सम्बन्धी मानकों के पालन की अधिक चिन्ता नहीं है। वे तो केवल विकासशील देशों से निर्यातित वस्तुओं के अपने बाजारों में प्रवेश का मार्ग बंद/अवरुद्ध कर देने के लिये ही इस कुत्सित खेल को खेल रहे हैं। इस पर भी विश्व श्रमिक आंदोलन का एक बड़ा भाग जिसमें विकासशील देश के भी कुछ श्रमिक संगठन सम्मिलित हैं, सामाजिक अनुच्छेद को व्यापार के साथ जोड़ने के प्रयासों का समर्थन कर रहा है। उनके भीतर यह गलत धारणा घर कर बैठी है कि

इस प्रकार के जुड़ाव से उनके देश में श्रमिकों की स्थिति में सुधार होगा। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि सामाजिक अनुच्छेद के इस जुड़ाव के फलस्वरूप विकासशील देशों में केवल उद्योगों के किवाड़ बंद होंगे, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को मनमाने ढंग से बाजार का दोहन करने की अनुमति मिलेगी और श्रमिकों के एक बहुत बड़े भाग को वंचना की स्थिति में धकेल दिया जाएगा।

गैर सरकारी संगठनों की कार्य प्रणाली

साम्राज्यवादी अभिकरण उन गैर सरकारी संगठनों जिनके पास भारी कोष हैं, के नेटवर्क को श्रमिक संघों के कार्यक्षेत्र में काम करने के लिए बढ़ावा दे रहे हैं; ये अभिकरण व्यावहारिक कार्य क्षेत्र में उनकी (गैर सरकारी संगठन) मदद कर रहे हैं। ये गैर सरकारी संगठन श्रमिक संघों के सहायकों जैसी भाव भंगिमाओं का प्रदर्शन करते हैं और वाम पक्षी दृष्टिकोण वाले संगठन होने का स्वांग भरते हैं किन्तु वास्तव में ये संगठन अपने इन्हीं विदेशी प्रभुओं की सहायता कर रहे होते हैं जिनके धन से वे सिंचित होते हैं। वे साम्राज्यवाद के आदेशों का पालन करते हुए श्रमिक संघों को उनकी अपनी-अपनी राजनीतिक एवं सांगठनिक गतिविधियों से विमुख करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। दासत्वभाव में साम्राज्यवाद के आगे झुकी सरकारें भी इन गैर सरकारी संगठनों को वित्तीय एवं सांगठनिक दृष्टि से बढ़ावा देने के लिये साम्राज्यवाद के हाथों में खेलती हैं। इस प्रक्रिया में गैर सरकारी संगठन श्रमिक संघों का स्थान हड़पने का प्रयास भी करते हैं। इन गैर सरकारी संगठनों की एक और कार्य प्रणाली नव उपनिवेशवादियों के पक्ष में श्रमिक वर्ग को उनके विचारधारात्मक हथियार से वंचित करने की भी होती है। यद्यपि कुछ गैर सरकारी संगठन वास्तव में अच्छे होते हैं, उनका निहितार्थ एवं ध्येय अच्छा एवं ऊँचा होता है, वे सामाजिक क्षेत्र में अच्छा एवं पूर्ण सत्यनिष्ठा के साथ काम करते हैं, किन्तु अनेक गैर सरकारी संगठनों का चरित्र संदेहास्पद होता है।

भारत में सभी श्रमिक संगठनों ने सामाजिक अनुच्छेद को व्यापार के साथ जोड़ने का विरोध किया है। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, कोपेनहेगन में सम्पन्न विश्व विकास शिखर सम्मेलन इत्यादि सभी अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर अपने विरोध की अभिव्यक्ति की है। भारत सरकार भी अपना विरोध व्यक्त कर चुकी है। किन्तु यह बात रुचिकर है कि भारत के अनेक गैर सरकारी संगठन जिन्हें सरकार का वित्तीय संरक्षण प्राप्त है, उन्हीं मंचों पर ''सामाजिक अनुच्छेद'' के पक्ष में प्रचार किया।

''अराजनीतिक'' मुखौटा

विचारधारात्मक हमले का एक और पक्ष श्रमिक आंदोलन को उसकी वर्गीय तथा राजनीतिक समझ से तोड़ना है। इन दिनों कुछ श्रमिक संघों जिनमें स्वयं को वाम पक्षीय करार देने वाले कुछेक श्रमिक संघ भी सम्मिलित हैं, के लिये राजनीति की बातें करना फैशन बन चुका है किन्तु उनका निहितार्थ अराजनीतिक ट्रेड यूनियनवाद को बढ़ावा देना तथा उसके लिये काम करना होता है। वे प्रचार करते हैं कि श्रमिक संघों को राजनीति से अलग अथवा स्वतंत्र रहना चाहिये। उनका अराजनीतिक स्वरूप वास्तव में एक मुखौटा है जिसके पीछे वे पूंजीपतियों तथा शोषक वर्ग की सहज राजनीति के प्रति अपने समर्थन को छुपा लेते हैं। राजनीति की भर्त्सना करके वे पूंजीवादी व्यवस्था तथा साम्राज्यवाद की राजनीति और उनके द्वारा किये जा रहे लोगों के निर्मम एवं अनंत शोषण की ओर से अपनी आंखें मूंद लेते हैं।

इस विचारधारात्मक हमले का एक और आयाम है, यह आयाम उसके अभिजात वर्गीय बुद्धिजीवी समर्थकों ने जोड़ा है, उनका कहना है कि आर्थिक नीति के मामले में हमें विचारधारा से निदेशित नहीं होना चाहिये। वे बातें इस प्रकार करते हैं कि मानों उनके विशेष आर्थिक सिद्धान्त अपने तौर पर किसी भी विचारधारा से रहित हों और वे इस प्रकार का आचरण एक विशेष श्रेणी के हितों की सेवा करने के लिये करते हैं। ''अराजनीतिक ट्रेड यूनियनों'' तथा ''विचारधारा विहीन आर्थिकता'' की ये बातें श्रमिक वर्ग का अराजनीतिकरण करने तथा उसे निशस्त्र कर देने के उसी षड्यंत्र के भाग हैं। उनका निहितार्थ है कि श्रमिक वर्ग को सामाजिक परिवर्तन के लिये संघर्ष का नेतृत्व करने की अपनी क्षमताओं की अनुभूति न हो, वे (श्रमिक) अपनी समस्याओं तथा कष्टों के वास्तविक कारणों को समझ न सकें, पहचान न सकें, और इस शोषणकारी व्यवस्था की जड़ों पर हमला करने से स्वयं को रोके रखें।

पूरे वर्ग के पुरोधा के रूप में श्रमिक संघ किसी एक राजनीतिक दल के सहायक संगठन नहीं हो सकते। किन्तु इस का अर्थ यह नहीं है कि वे अराजनीतिक ही बने रहें। उनकी अपनी एक राजनीति अर्थात् श्रमिक वर्ग की राजनीति अवश्यमेव होनी चाहिये, पूंजीवाद की शोषणकारी प्रकृति के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण स्पष्ट होना चाहिये, श्रमिक वर्ग के संघर्ष को चरणबद्ध ढंग से कैसे आगे बढ़ाया जाए और इस संघर्ष को शोषणकारी व्यवस्था की समाप्ति की दिशा में कैसे आगे बढ़ाया जाए, इस सम्बन्ध में उनकी अपनी समझ होनी चाहिये। अन्यथा, वे साम्राज्यवाद की कुचालों में फंस कर श्रमिक संघों की गतिविधियों को केवल अर्थवाद तक ही

सीमित रखने लगेंगे और पूंजीवाद के विरुद्ध श्रमिक वर्ग के संघर्ष में भटकाव लाने का एक कारण बन जाएंगे। हमारे देश में इस विचार एवं दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने के लिये अनेक अभिकरण सक्रिय हैं, उन्होंने विदेशी सहायता से साहित्य का प्रकाशन भी किया है।

'टिना' के विचार का पोषण

विचारधारात्मक हमले का एक और आयाम ''कोई विकल्प नहीं'' के विचार को आगे बढ़ा कर साम्राज्यवादियों के मनोरथों के आगे समर्पण करना है। उदारीकरण के बुद्धिजीवी एजेंटों के लिये यह फैशन ही बन चुका है और यही लोग जोरदार तर्क देते हैं कि इस एकल ध्रुवीय विश्व में साम्राज्यवादी नव उदार भूमण्डलीयकरण को स्वीकार करने के अतिरिक्त ''और कोई विकल्प नहीं (टिना) है।'' वे तर्क देते हैं कि हमारे यहां विकास के लिये आवश्यक संसाधन ही कहां है और इस स्थिति में हमें विदेशी निवेशकों अर्थात् ऋण देने वाले अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों द्वारा लादी गई शर्तों को मानना ही पड़ेगा। एकल ध्रुवीय विश्व के वर्तमान संदर्भ में वे यहां तक कह रहे हैं कि इससे श्रेष्ठ कोई और विकल्प है ही नहीं। इस ''टिना'' कारक के विषाणु श्रमिक संघों और उनके साथ-साथ जनवादी आंदोलन के एक बड़े भाग में भी प्रवेश कर चुके हैं, वे लोग भी तर्क देने लगे हैं कि भूमण्डलीयकरण तो अब एक सम्पन्न कार्य बन चुका है, अच्छा तो यही होगा कि हम इसका विरोध करने की अपेक्षा इसके मूल ढांचे के भीतर रह कर अच्छी सौदेबाजी करें। साम्राज्यवादी सिद्धान्तकारों द्वारा इस ''टिना'' कारक का और भी अनेक रूपों में प्रस्तुतिकरण किया जाता है। इसका उद्देश्य भूमण्डलीयकरण के हमले के विरुद्ध प्रतिरोध की धार को कुंद करना और साम्राज्यवादी शोषण एवं उत्पीड़न के मार्ग के सभी कंटकों को दूर करके उसे प्रशस्त करना है।

किन्तु यह तथ्य अपने स्थान पर बना हुआ है—निश्चित रूप से शोषणकारी पूंजीवादी सत्ता का एक विकल्प है—समाजवादी व्यवस्था! यह व्यवस्था मानवता के भविष्य के लिये अवश्यंभावी है।

किसी भी व्यक्ति को इस बात का भली-भांति स्मरण होगा कि उदारीकृत सत्ता से पहले के आत्मनिर्भर आर्थिक विकास के मार्ग की तुलना में नव उदार-भूमण्डलीयकरण द्वारा प्रस्तुत विकल्प कहीं अधिक खराब सिद्ध हुआ है, विकास के पूंजीवादी पथ पर अडिग रहने जैसे सभी नकारात्मक पक्ष होने पर भी वह इस नव उदार भूमण्डलीकरण द्वारा प्रस्तुत विकल्प से श्रेष्ठ था।

यह कहना कि विकासशील देशों के पास अपने विकास के लिये धन जुटाने के संसाधन ही नहीं, तथ्यों से मेल नहीं खाता। यहां तक कि भारत में भी संसाधनों का कोई अभाव नहीं है। केवल सत्ताधारी राजनीतिक सत्ता में उन संसाधनों को जुटाने के लिये आवश्यक राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव है, इन संसाधनों पर ग्रामीण क्षेत्र के समृद्ध जन, इजारेदार घराने, सट्टेबाज, काले बाजार का धंधा करने वाले तथा जमाखोर कुण्डली मारे बैठे हैं। इन्हीं लोगों ने राष्ट्रीयकृत बैंकों से 58000 करोड़ रुपये का ऋण लिया था जिसे लौटाया नहीं गया और अब उसे बट्टेखाते में डाल दिया गया है। आयकर/नैगम कर/राजस्व तथा आबकारी शुल्क की पिछली बकाया राशि 62,000 करोड़ रुपये की वसूली नहीं की गई। बड़े नैगम घरों ने यह सारी राशि हड़प ली है। काले धन का भी अम्बार लगा हुआ है। इसलिए संसाधनों के अभाव को लेकर टसुए बहाना हास्यास्पद है। सरकार भी प्रत्येक वर्ष अपने वर्ग सहयोगियों को भारी भरकम छूटें देकर जलती आग में घी डालने का काम कर रही है। सरकार जहां एक ओर अपने संसाधनों का बलिदान शोषक श्रेणी के लिए करती है वहीं दूसरी ओर साधारण जनता की लूट मचा कर अपना कोष पुनः भरने का प्रयास करती है। इसलिए, संसाधनों के अभाव की कहानी झूठी है; लोगों को धोखा देने के लिये ही इसे बार-बार दोहराया जाता है।

हमारे देश में 1991 से जारी उदारीकरण विरोधी संघर्ष अपनी अनेक सीमाएं होने पर भी उदारीकरण की गति को मंद कर सका है और यह तथ्य स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। अब भी जनता के एक बड़े भाग में इस संघर्ष को ले जाना शेष है। हाल ही के वर्षों में विश्व के अनेक भागों जिनमें विकसित पूंजीवादी केंद्र भी सम्मिलित हैं, में श्रमिक आंदोलन में उभार देखा गया है। इसलिए, यदि श्रमिक वर्ग जनगण को एकजुट कर सकेगा तो उसकी (जनगण) कहीं अधिक व्यापक एकता का निर्माण किया जा सकेगा और इस विनाशकारी नीतिगत सत्ता के विरुद्ध चल रहे राष्ट्रव्यापी संघर्ष निश्चित रूप से सुदृढ़ होंगे।

सैन्य हमले

अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवाद ने आर्थिक मोर्चे पर हमले करने के साथ-साथ विश्व भर में अपनी दादागिरी को सुदृढ़ बनाने के लिये अपने राजनीतिक सैन्य हमले तेज कर दिये हैं। वह सक्रिय रूप से वर्तमान समाजवादी देशों को धराशायी कर देना चाहता है और उसने ''लोकतंत्र'' तथा ''मानवाधिकारों'' के नाम पर उनके विरुद्ध अंतहीन आर्थिक एवं विचारधारात्मक युद्ध छेड़ रखा है। अमरीकी

साम्राज्यवाद चीन, क्यूबा, कोरिया तथा वियतनाम में हस्तक्षेप करने के साथ-साथ उत्तेजक सैन्य कार्रवाईयां कर रहा है, वह विश्व भर में दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी शक्तियों की पीठ थपथपा रहा है। वह फिलस्तीनी जनता के विरुद्ध इस्राइल की पीठ थपथपा रहा है। इराक तथा युगोस्लाविया को अलग-थलग करने के उद्देश्य से अपनी बर्बरता का परिचय वह पहले ही दे चुका है; उनका अपराध बस इतना था कि उन्होंने अमरीकी साम्राज्यवादियों को चुनौती देने का दु:साहस कर डाला था।

अमरीकी साम्राज्यवाद अपने युद्धोन्मादी अभियान के अन्तर्गत विश्व भर में अपने सैन्य हस्तक्षेपों को छुपाने के लिये संयुक्त राष्ट्र का उपयोग करना भी बंद कर चुका है अर्थात् वह अत्याधिक दु:साहसी हो गया है। वह खुले रूप में पैशाचिक नाटो की गतिविधियों का प्रसार करके विश्व पर अपना सैन्य प्रभुत्व जमाने के लिये राजनीतिक तथा विचारधारात्मक हमले कर रहा है।

युगोस्लाविया पर विध्वंसात्मक आक्रमण के दिनों नाटो ने 23 अप्रैल , 1999 को वाशिंगटन में अपनी 50वीं वर्षगांठ मनाई थी। इस अवसर पर अपने भाषण में बिल क्लिंटन ने कहा था : ''नाटो देशों की सीमाओं के बाहर सैनिक कार्रवाईयां की जा सकती हैं।'' दूसरे, उन्होंने कहा था कि ''हमें नाटो के सदस्य देशों की सीमा के बाहर क्षेत्रीय तथा जातिगत विवादों एवं टकरावों का समाधान करने के लिये अपनी तत्परता की पुन: पुष्टि करनी चाहिए।''

इस प्रकार की नीतिगत घोषणाएं जी-7, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन जैसे मंचों के माध्यम से विश्व में पूर्ण आर्थिक आधिपत्य स्थापित करने के अभियान का ही परिणाम हैं। यह सब वर्तमान में जारी भूमण्डलीय आर्थिक संकट जो अमरीका सहित पूरे पूंजीवादी विश्व को भयभीत कर रहा है, को छिपाने के उद्देश्य से किया जा रहा है और जिसके लिये वे अपनी युद्धोन्मादी विचारधारा को मजबूत बनाना चाहते हैं। इसे आधिकारिक रूप से ''नयी व्यवस्था'' कहा जाता है। यह व्यवस्था न केवल विश्व शांति के लिये खतरा उत्पन्न कर रही है अपितु राष्ट्रों की सम्प्रभुता के लिये प्रत्यक्ष खतरा भी है। इससे राष्ट्रों की सम्प्रभुता को नष्ट कर देने की उस साम्राज्यवादी खेल का साफ साथ पता चल जाता है। जिसके लिये भूमण्डलीयकरण की प्रक्रिया आगे बढ़ाई जा रही है।

अस्मिता की राजनीति

बिल क्लिंटन द्वारा उल्लिखित दूसरी बात में साम्राज्यवाद के विचारधारात्मक

हमलों की व्याख्या की गई है अर्थात् यह वर्गीय राजनीति नहीं है अपितु ''अस्मिता की राजनीति'' है—जो प्रासंगिक है—यह अस्मिता समुदाय, जाति तथा धर्म इत्यादि पर आधारित है। यह रुझान जातिवादी, साम्प्रदायिक तथा संकीर्णतावादी पहचानों एवं विचारधाराओं को बढ़ावा देता है; अनेक देशों में लोगों में फूट डालता है तथा उन्हें विभाजित करता है और साम्राज्यवाद की सहायता करता है ताकि वे इन विभाजनों से लाभ उठा सकें। यूगोस्लाविया के विरुद्ध निरंतर जारी विचारधारात्मक हमले की यही पृष्ठभूमि है जो नाटकीय ढंग से 1991 में सोवियत संघ का विखण्डन होने के पश्चात् शुरू हुआ था।

भारत में भी हम इसी रुझान का सामना कर रहे हैं। अमरीका पहले ही कश्मीर में हस्तक्षेप कर चुका है और ***हिन्दुत्व*** की शक्तियां आक्रामक ढंग से देश की धर्मनिर्पेक्षता तथा लोकतंत्र की नीवों को क्षतिग्रस्त कर रही हैं। ये शक्तियां प्रत्यक्ष रूप में तथा खुलकर अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी एवं साम्राज्यवाद के हमलों में उनकी सहायता कर रही हैं। उनका प्रत्यक्ष हमला श्रमिक वर्ग के विरुद्ध है; यह हमला उसकी वर्गीय जागरूकता को नष्ट करने तथा उन्हें समुदाय, जाति, वंश तथा धर्म पर आधारित ''अस्मिता की राजनीति'' से जोड़ने के उद्देश्य से किया जा रहा है।

भाजपा सरकार साम्राज्यवाद के साथ सहयोग करने में और अधिक रुचि ले रही है। वह भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था में अमरीका की कनिष्ठ सहयोगी बन जाने के लिये भी व्यग्र है। भारत गुट-निरपेक्ष आंदोलन (नाम) का एक संस्थापक सदस्य था। किन्तु भाजपा सरकार ने 'नाम' के साम्राज्यवाद विरोधी चरित्र को क्षतिगस्त कर दिया है।

साम्राज्यवाद की ओर से थोपे गए उदारीकरण के साथ-साथ राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ द्वारा प्रचारित हिन्दुत्व की फाशीवादी विचारधारा के अन्तर्गत समाज का साम्प्रदायीकरण और अधिक आक्रमक रुख अपना चुका है। इन दोनों प्रक्रियाओं से हमारे देश के धर्म निरपेक्ष आधार तथा सम्प्रभुता को क्षतिग्रस्त करने में साम्राज्यवाद को सहायता मिली है। हमें इन दोनों के विरुद्ध संघर्ष करना होगा।

देश के श्रमिक वर्ग को अपने व्यावहारिक अनुभव के साथ, अपनी सभी अभिव्यक्तियों एवं प्रकटीकरणों के द्वारा साम्राज्यवाद के विचारधारात्मक हमलों का सामना भी विचारधारा के शस्त्र के साथ करना होगा। उसे पुनः दोहराना होगा :

** मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित पूंजीवाद समाज की बुराईयों को स्थायी रूप से दूर नहीं कर सकता अथवा उनका स्थायी समाधान नहीं सकता।*

** वर्तमान में जारी नव-उदार भूमण्डलीयकरण का विकल्प निश्चित रूप से है और इसे बदला जा सकता है।*

** समाजवाद श्रम-जीवी जनता की सभी श्रेणियों का पूर्वत: अंतिम लक्ष्य बना हुआ है।*

सी आइ टी यू को सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग का नेतृत्व करके इस कार्य को आगे बढ़ाना होगा।

साम्राज्यवाद श्रमिक वर्ग तथा मानवता का प्रधान शत्रु है और हमें इसके विरुद्ध सभी शक्तियों को एकजुट करना होगा। हमें समाजवाद का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये तेजी से आगे बढ़ना होगा तथा इस लक्ष्य की पूर्ण तत्परता के साथ रक्षा करनी होगी तथा अपने कार्यकर्ताओं को राजनीतिक एवं विचारधारक शस्त्र से सुसज्जित करना होगा और उन्हें इस दिशा में आगे बढ़ाना होगा।

साम्राज्यवाद के आर्थिक हमले

पूंजीवादी संकट

आधुनिक उत्पादक शक्ति अपने वर्तमान में जारी प्रौद्योगिकीय विकास के फलस्वरूप पूरे विश्व को दरिद्रता तथा भयानक असमानता से मुक्ति दिला सकती है। प्रौद्योगिकीय प्रगति के साथ जहां उत्पादन की शक्ति का विकास होता है वहीं उसके साथ-साथ लोगों की क्रय शक्ति एवं क्षमता को भी बढ़ाया जा सकता है। किन्तु पूंजीवादी व्यवस्था में ऐसा कर पाना सम्भव नहीं है। समाजवादी व्यवस्था ही प्रौद्योगिकीय उन्नति एवं विकास का सदुपयोग करते हुए उत्पादन बढ़ाने के लिये बाजारों का विकास कर सकती है और उन्हें विस्तृत बना सकती है।

निर्मित (अर्थात् मैन्युफेक्चर्ड) वस्तुएं बिकेंगी नहीं और यूं ही पड़ी रहें तो वे पूंजीपतियों के लिये लाभों का अर्जन नहीं कर सकतीं। बड़े बाजारों का उपयोग करने से ही उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है अथवा उसमें तेजी लाई जा सकती है। पूंजीवादी विकास के लिये बाजार का होना एक पूर्व एवं अनिवार्य शर्त हैं। बुर्जुआजी एक वर्ग के रूप में अपना प्रादुर्भाव होने के समय से ही पूरे विश्व में इसकी अंतहीन खोज में लगी रही है। किन्तु इस व्यवस्था की सीमाओं में रह कर बाजार को असीमित विस्तार नहीं दिया जा सकता। वर्तमान में, बुर्जुआजी ने लगभग पूरे के पूरे बाजार को जीत लिया है और बहुत ही कम बाजार शेष बचा होगा जिसका पता उसे लगाना है और यहाँ तक कि इस समय जो बाजार उसके पास हैं, वे भी निश्चल बनते चले जा रहे हैं अर्थात् उनमें ठहराव आ रहा है। इसके फलस्वरूप पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के लिये अत्यंत गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया है।

उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली के विकास का लम्बा इतिहास दर्शाता है कि समय समय पर पूंजीवाद स्वयं को स्थापित करने और अपना अस्तित्व बनाए रखने तथा इसी प्रकार आर्थिक एवं राजनीतिक संतुलन को अपने पक्ष में और अधिक समयावधि के लिये झुकाने में सफल होता रहा है। किन्तु वह समय समय पर उत्पन्न होने वाले अपने संकटों को नियंत्रित करने अथवा दूर करने में कदापि सक्षम

नहीं हो सका जबकि यही संकट सम्पूर्ण बुर्जुआ समाज के लिये खतरे की घण्टी बजाते रहे हैं, प्रत्येक नया संकट अपने पूर्ववर्ती संकट की अपेक्षा अधिक उग्र होता चला गया है।

वर्तमान में जारी पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सर्व साधन सम्पन्न लोगों तथा साधनहीन लोगों (अथवा वंचितों) के मध्य विषमता की गहरी खाई और गहरी एवं चौड़ी होती जाती है तथा उसके साथ ही साथ बेरोजगारी एवं रोजगारहीनता भी बढ़ती चली जाती है। समृद्ध एवं निर्धन परिवारों अथवा अमीर एवं गरीब देशों के मध्य सदा से बढ़ती चली जाने वाली विषमताओं के साथ धन सम्पत्ति मुट्ठी भर लोगों के हाथों में चली जाती है। बाजार का विस्तार नयी प्रौद्योगिकी के माध्यम से उत्पादन की विकसित क्षमताओं के अनुरूप नहीं होता।

नये रुझान

बीसवीं शताब्दी का समारम्भ उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था के संकट काल में हुआ था। हाल ही के समय में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का अभूतपूर्व विकास हुआ है, इस विकास के फलस्वरूप पूंजीपतियों को बहुत ही थोड़ी श्रम शक्ति को काम पर रख कर व्यापक स्तर पर उत्पादन करने में सहायता मिली है। इसी पृष्ठभूमि में बीसवीं शताब्दी के अस्ताचल में जाने के समय पूंजीपति वर्ग और अधिक आक्रमक हो गया है। विश्व भर में सर्वत्र उद्योगों का गला घोंटा जा रहा है, भारी संख्या में श्रम शक्ति को रोजगार से निकाल बाहर किया जा रहा है। बाजार सीमित हैं, भूमण्डलीय बाजार को अपने-अपने नियंत्रण में लेने के लिये पूंजीपतियों के मध्य गला काट प्रतिस्पर्धा चल रही है और यह प्रतिस्पर्धा पागलपन की सीमा तक बढ़ चुकी है। वस्तुत: विरोधाभास तो पूंजीवादी व्यवस्था में ही निहित हैं और ये उसे विरासत में मिले हैं। इन्हीं विरोधाभासों के चलते बड़े विदेशी / बहुर्राष्ट्रीय पूंजी के मध्य संघर्ष होता है और मंझोली एवं छोटी पूंजी के मध्य भी संघर्ष चलता रहता है और यह संघर्ष तथाकथित विकसित एवं विकासशील देशों में भी चला करता है।

भूमण्डलीयकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण के बहाने अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी को नये-नये मार्ग मिल गए हैं जिनके माध्यम से स्वदेशी तथा विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विश्व बाजार पर अपना पूरा नियंत्रण स्थापित करना चाहती हैं और इसके साथ ही साथ वे भूमण्डलीय उत्पादन व्यवस्थाओं को भी अपने नियंत्रण में ले लेना चाहती हैं। इनमें से अनेक देशों ने अपने-अपने देश भक्त लोगों द्वारा दिये गए बलिदानों के फलस्वरूप अपने स्वदेशी एवं प्रौद्योगिकीय औद्योगिक आधार विकसित

किये हैं। आत्मनिर्भर विकास के लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में उनके बढ़ते कदमों अथवा प्रयासों को अनियंत्रित मुक्त बाजार नीति के कारण गहरा धक्का लगा है। वि-निर्माण एवं वि-औद्योगीकरण की प्रक्रिया तेज हुई है।

इन देशों के बाजारों को अपने नियंत्रण में लेने के लिये वि-उद्योगीकरण हेतु सतत प्रयास किये जा रहे हैं अर्थात् स्वदेशी उद्योगों को बंद किया जा रहा है, लाभ पर चलने वाले औद्योगिक इकाईयों विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का पूंजी-विनिवेश किया जा रहा है, सीमा शुल्कों को समाप्त करने के साथ ही साथ आयातों का विनियमन हो रहा है और इस प्रकार स्वदेशी उद्योगों छोटे तथा मंझौले दोनों आकारों के, को बहुराष्ट्रीय दैवों के साथ असमान प्रतिस्पर्धा का सामना करने पर विवश किया जा रहा है, सरकारों को सामाजिक क्षेत्रों से हट जाने के लिये बाध्य किया जा रहा है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियां तथा विदेशी कम्पनियां अपनी उत्पादन लागतों में और कमी लाने के प्रयासों के अन्तर्गत अपनी पूंजी तथा उसके साथ साथ अपने उत्पादन-आधार को भूमण्डल के एक भाग से दूसरे भाग में निरंतर अंतरित कर रही हैं। इसका परिणाम विश्व अर्थव्यवस्था में व्यापक स्तर पर आई अस्थिरता के रूप में निकला है, इस अस्थिरता की सर्वाधिक मार तृतीय विश्व के देशों को झेलनी पड़ रही है। यहां तक कि उन्नत पूंजीवादी देश भी अनिश्चित औद्योगिक एवं आर्थिक वातावरण के दुष्प्रभावों से बच नहीं सकते। अभी हाल ही के समय में विकसित औद्योगीकृत देशों में भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की पूंजी तथा उत्पादन-आधार की दूसरे देशों में उड़ान भरे जाने की संवृति को पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों के साथ सौदेबाजी करने के एक शस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है—इस सौदेबाजी के अन्तर्गत श्रमिकों को कम वेतन लेने, कामकाजी घण्टों को लोचनीय बनाने तथा सामाजिक लाभों में कटौती जैसी बातें स्वीकार कर लेने के लिये बाध्य किया जाता है। इसका अंतिम विश्लेषण यह होगा कि विश्व भर में श्रमिक वर्ग की पीठ लग जाएगी और उसके अधिकारों एवं दैनिक आजीविका पर कड़े (अथवा सांघातिक) प्रहार किये जाएंगे। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकीय क्रांति ने वस्तुतः उन्नत देशों में ''रोजगार विहीन विकास'' का मार्ग ही प्रशस्त किया है। तृतीय विश्व जाने अथवा अनजाने में उसी विनाशकारी पथ का अनुसरण कर रहा है।

विश्व बाजार पर अपना एकाधिकार अथवा दादागिरी स्थापित करने के लिये वे विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा नवगठित विश्व व्यापार संगठन का उपयोग कर रहे हैं। साम्राज्यवादी शक्तियों के भीतर भी संयुक्त राज्य अमरीका ने अपनी

एकाधिकारवादी सत्ता स्थापित कर ली है। जो देश उसके निदेशों का पालन करने के लिये तत्पर नहीं होते उनके विरुद्ध उसके द्वारा अपने सैन्य बल का प्रयोग किया जाता है।

समाज पर प्रभाव

विश्व विकास रिपोर्ट 1999-2000 के अनुसार..."विकास के परिणामों का व्यापक चित्र (अथवा स्थिति) बहुत चिंताजनक है। पिछले कई दशकों से सभी देशों में सर्वाधिक दरिद्र अर्थात् दरिद्रतम लोगों तथा उनसे कुछ अच्छी स्थिति वाले दूसरे एक तिहाई भाग अर्थात् मध्यवर्ती लोगों की आनुपातिक प्रति व्यक्ति आय विश्व के समृद्ध एक तिहाई भाग अर्थात् समृद्धतम लोगों की आनुपातिक आय की तुलना में, तीव्रगति से कम होती चली जा रही है। और वे अपना आर्थिक आधार खोते चले जा रहे हैं। मध्यवर्ती एक तिहाई भाग का जी डी पी समृद्धतम एक तिहाई भाग के जी डी पी की तुलना में 12.5 प्रतिशत से कम होकर 11.4 प्रतिशत रह गया है जबकि दरिद्रतम एक तिहाई भाग का जी डी पी 3.1 प्रतिशत से कम होकर 1.9 प्रतिशत रह गया है।"

विश्व भर में गरीब लोगों की संख्या बढ़ी है और कुछ क्षेत्रों में दरिद्रजनों का भाग अथवा अनुपात बढ़ा है। "विकासशील देशों में 4.4 अरब लोगों में से लगभग तीन/पांच भाग सफाई की मूलभूत सुविधाओं के अभावों से त्रस्त है, एक तिहाई भाग को स्वच्छ पेय जल उपलब्ध नहीं होता, एक चौथाई भाग को पर्याप्त आवासीय सुविधा प्राप्त नहीं है, पांचवें भाग को आधुनिक स्वास्थ्य सेवाएं सुलभ नहीं होती। लगभग 20 प्रतिशत बच्चे अपने पाठशाला जीवन के पांच वर्ष भी पूर्ण नहीं कर पाते और इतने ही बच्चों को उनके आहार में कैलोरीज़ तथा प्रोटीन की पर्याप्त मात्राएं नहीं मिलतीं।"

विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों में आय सम्बन्धी विषमताएं पूरे विश्व भर में बढ़ रही हैं। अमीर और गरीब के मध्य खाई और चौड़ी एवं गहरी होती चली जा रही है। वर्ष 1993 में भूमण्डलीय जी डी पी 23 खरब अमरीकी डालर होने का अनुमान था। इसमें दरिद्र देशों का भाग केवल 5 खरब अमरीकी डालर था, यहां तक कि ये लोग विश्व की कुल जनसंख्या का 80 प्रतिशत भाग हैं। वर्ष 1960 तथा 1991 के मध्य विश्व में समृद्धतम 20 प्रतिशत जनसंख्या का भाग 70 प्रतिशत से बढ़ कर 80 प्रतिशत हो गया जबकि दरिद्रतम 20 प्रतिशत जनसंख्या का भाग 2.3 प्रतिशत से कम होकर 1.4 प्रतिशत रह गया।

विश्व बैंक द्वारा हाल ही में कराया गया एक अध्ययन विश्व में आय की असमानता में वृद्धि को दर्शाता है। शीर्षस्थ 200 अरबपतियों की मिली-जुली सम्पत्ति वर्ष 1999 में 1,135 अरब अमरीकी डालर तक पहुंच चुकी थी जबकि 1998 में यही सम्पत्ति 1,042 अरब अमरीकी डालर थी। सभी कम विकसित देशों में 582 अरब लोगों के लिये मिली जुली आय 146 अरब अमरीकी डालर थी, इसकी शीर्षस्थ अरबपतियों की आय के साथ तुलना की जा सकती है।

भूमण्डलीय प्रत्यक्ष निवेश के कुल प्रवाह का 70 प्रतिशत से अधिक भाग पूंजीवाद के तीन भूमण्डलीय केन्द्रों अमरीका, युरोपीय संघ तथा जापान में केन्द्रित रहा था। इसके बदले में बताया गया है कि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ डी आइ) का 30 प्रतिशत भाग केवल कुछेक पूर्व के तथाकथित ''उदयीमान बाजारों'' में केन्द्रित था और इस प्रक्रिया से भी बड़ा भाग दक्षिण एशिया की झोली में गया। इन बाजारों में कुल लाभों की उच्चतम दरों को प्राप्त करने के लिये नि:संदेह यह प्रोत्साहन एक अच्छा अवसर सुलभ कराता है।

वर्ष 1990 तथा 1998 के मध्य वस्तुओं तथा सेवाओं के विश्व निर्यात में तेजी से वृद्धि हुई है, यह 4.7 खरब अमरीकी डालर से बढ़ कर 7.5 खरब अमरीकी डालर तक जा पहुंचा है (अर्थात् इसमें 59.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई)। किन्तु, इसका लाभ उत्तर तथा दक्षिण दोनों दिशाओं के अधिक गतिशील एवं शक्तिशाली देश उठा रहे हैं। वर्ष 1988 में कम विकसित देशों जहां विश्व की कुल जनसंख्या का 10 प्रतिशत भाग रहता है, की झोली में भूमण्डलीय निर्यात का केवल 0.4 प्रतिशत भाग पड़ा था जो 1980 के 0.6 प्रतिशत से कम होकर 1990 में 0.5 प्रतिशत रह गया था।

इनमें से अनेक विकासशील देश ''ऋणों के मकड़जाल'' में फंस रहे हैं, वे असहाय अवस्था में उस ओर सरक रहे हैं। तृतीय विश्व के देशों का सार्वजनिक ऋण वर्ष 1995 के अंत तक 2067 अरब अमरीकी डालर तक जा पहुंचा था। राष्ट्रीय सरकारें खेद के साथ जन साधारण को मूलभूत सेवाएं सुलभ कराने के अपने दायित्व से पल्लू छुड़ा रही हैं, उनके पास विकास गतिविधियों के लिये अधिक धन नहीं है, इसमें अचम्भित होने का कोई कारण नहीं है। कल्याणकारी कार्यक्रमों, सेवाओं की सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं इत्यादि पर अधिक से अधिक हमले किये जा रहे हैं। ये रुझान बढ़ रहे हैं।

भारत पर विदेशी ऋण का बोझ वर्ष 1998-99 में 97 अरब, 66 करोड़, 60

लाख अमरीकी डालर था; यह सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 23 प्रतिशत था। ऋण सेवा अर्थात् ब्याज 11 अरब, 34 करोड़, 20 लाख अमरीकी डालर था। उसके साथ-साथ रुपये की विनिमय दर में गिरावट आ गई और वह 1992-93 की 28.96 रुपये की तुलना में 1998-99 में गिर कर 42.08 रुपये तक जा पहुंची। वर्तमान में एक अमरीकी डालर का मूल्य 46.00 रुपये से अधिक है। इसका दुष्प्रभाव भारत की अर्थव्यवस्था पर पड़ा है और देश की नगद राशि की स्थिति और खराब होती चली जा रही है।

इसके अतिरिक्त बहुत भारी मात्रा में विदेशी वस्तुओं का आयात होने किन्तु उसके अनुरूप निर्यात नहीं होने के दुष्परिणामस्वरूप व्यापार संतुलन की स्थिति भी बिगड़ती चली जा रही है। वर्ष 1995-96 के माइनस 38,061 करोड़ रुपये के व्यापार संतुलन की तुलना में वर्ष 1998-99 में यह माइनस 55,478 करोड़ रुपये हो गया। इसका अर्थ है कि व्यापार संतुलन की स्थिति उस समय से ही प्रत्येक वर्ष निरंतर 13 प्रतिशत की दर से बिगड़ती चली गई है।

बाहरी लेन देन का विश्लेषण दर्शाता है कि गैर पेट्रोलियम वस्तुओं का आयात अधिकांश उपभोग करने योग्य, स्थायी तथा ऐश्वर्य की वस्तुओं से है, वर्ष 1992-93 के 15 अरब, 96 करोड़, 40 लाख अमरीकी डालर की तुलना में वर्ष 1999-2000 में 36 अरब, 77 करोड़, 50 लाख अमरीकी डालर तक जा पहुंचा। आयातों में इस दोगुणा वृद्धि हो जाने के कारण औद्योगिक प्रगति में पहले ही गिरावट आ चुकी है और उपभोक्तावाद बढ़ा है। उन विदेशी वस्तुओं की डम्पिंग जो देश में ही उपलब्ध हैं, हमारे देश को वि-उद्योगीकरण की दिशा में आगे बढ़ा रही है और इसके दुष्परिणामस्वरूप रोजगार में कमी आ रही है।

विकासशील देशों में पिछले दो दशकों में उत्पादक रोजगार 15 प्रतिशत तक कम हो गया है। युरोपीय संघ के कुछ देशों के आंकड़े इस प्रकार हैं, इंग्लैंड (43 प्रतिशत), फ्रांस (23 प्रतिशत) तथा जर्मनी (14 प्रतिशत)। युरोपीय संघ के शेष देशों में यह दर 10 प्रतिशत से ऊपर चली गई है। यहां तक कि अमरीका भी इसका अपवाद नहीं है।

निजीकरण किसके लाभ में?

किसी देश का आत्मनिर्भर आर्थिक विकास अधिकतर उसके स्वदेशी निवेशों पर निर्भर करता है। जहां कहीं भी आवश्यक हो विदेशी निवेशों से सहायता ली जा सकती है। विकासशील देशों में उपलब्ध निजी पूंजी इस प्रकार के विकास के लिये

आवश्यक कुल निवेशों की तुलना में बहुत अपर्याप्त है। यही कारण है कि विकास के पूंजीवादी पथ का वरण करने वाले विकासशील देशों में भी सार्वजनिक निवेशों ने निर्णायक भूमिका निभाई है। हमारे देश में भी आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था तथा औद्योगिक आधार को विकसित करने में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका कहीं अधिक अग्र गण्य, बर्चस्वकारी तथा सभी दृष्टि से व्यापक रही है। सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा अधिकांश आधारभूत क्षेत्रों को बनाया एवं बढ़ाया गया। आज भी भारत के निजी क्षेत्र के पास अपने बल पर इस दायित्व का निर्वहन करने के लिये वित्तीय एवं प्रौद्योगिकीय क्षमता नहीं है।

दूसरी ओर, कोई भी देश केवल विदेशी निवेशों के आधार पर वास्तव में आत्मनिर्भर नहीं बन सकता। विदेशी निवेश विकास कार्यों के लिये स्थायी स्रोत कदापि नहीं बन सकते और वे समय समय पर उच्चतर लाभों की खोज में तथा सट्टाबाजार की गतिविधियों के लिये अन्यत्र स्थानांतरित होते रहते हैं। यहीं पर बस नहीं, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (गैर सट्टाबाजार) की भूमिका लगभग सभी विकासशील देशों में—चीन जैसे अपवादों को छोड़ कर—स्वदेशी उत्पादकों को उत्पादन के क्षेत्र से निकाल बाहर करने की रही है और उन्होंने आतिथेय देश के निर्यात के लिये बहुत कम योगदान दिया है तथा उन्होंने स्वदेशी बाजार की आवश्यकताओं को भी पूरा करने के लिये बहुत कुछ नहीं किया। इसका शुद्ध परिणाम रोजगार सृजन की अपेक्षा रोजगार की भारी क्षति के रूप में निकला है, इसके अतिरिक्त लाभ—देश प्रत्यावर्तन के माध्यम से विशाल धन राशि का विदेश के लिये बहिर्वाह हो गया—अनेक मामलों में यह बहिर्वाह निवेश के अन्तर्वाह से भी अधिक हुआ है। चीन में, स्थिति न्यूनाधिक अलग है क्योंकि वहां विदेशी निवेशकों पर निर्यात सम्बन्धी अनुबंधों को पूरा करने की बाध्यता है और स्वदेशी बाजार के लिये प्रमुख भाग एवं स्वदेशी उद्योगों के लिये कड़े आर्थिक प्रशासन को सुनिश्चित बनाया गया है। और चीन में इस प्रकार का कड़ा आर्थिक प्रशासन आर्थिक मोर्चे पर समाजवादी सरकार की व्यापक उपस्थिति के आधार पर स्थापित है और इसके साथ ही उसके पास मजबूत आंतरिक ढांचे की सहायता पर टिका बर्चस्वकारी सार्वजनिक क्षेत्र है और स्वदेशी उद्योगों के लिये मजबूत नीतिगत सहायता भी उपलब्ध होती है।

पूंजीवाद के वर्तमान संकट में सिकुड़ते बाजार की अपेक्षा निश्चल पड़ा अतिशय उत्पादन ही सभी समस्याओं को जन्म दे रहा है। यही कारण है कि इस व्यवस्था में सर्वत्र अधिक से अधिक नये बाजार खोलने के लिये उन्मत्त प्रयास किये जाते हैं। भूमण्डलीय वित्तीय पूंजी आतिथेय देशों में सुस्थापित सार्वजनिक क्षेत्रों को

भंग करने की इच्छुक होती है ताकि वे इन क्षेत्रों में लूटमार की अपनी आक्रमक कार्रवाईयां कर सकें। इसलिये विदेशी/बहुराष्ट्रीयों और विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व व्यापार संगठन जैसे संगठनों जो सार्वजनिक उपक्रमों को बंद कर देने अथवा निजी मालिकों के हाथों में सौंप देने के लिये अपनी संस्तुतियां देते हैं, के मध्य प्रत्यक्ष रूप में अपवित्र गठबंधन बन जाता है।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये लोगों में भ्रांतियां फैलाने के उद्देश्य से कुत्सा प्रचार अभियान चलाया जाता है, इसके अन्तर्गत बताया जाता है कि निजीकरण करने से ही हमारे उद्योगों तथा अर्थव्यवस्था में नव जीवन का संचार हो सकता है, यह प्रचार निराधार है। इसके विपरीत यह कदम स्वदेशी उद्योगों तथा उनमें काम करने वाले लाखों-लाख श्रमिकों की आजीविका के मूल्य पर अपना लाभ एवं आय बढ़ाने में बहुराष्ट्रीय एवं विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सहायता करता है।

वर्तमान सरकार सुधारों के नाम पर भारतीय उद्योगों का मलियामेट कर देने के लिये केवल साम्राज्यवादी शक्तियों के हाथों में खेल रही है। सार्वजनिक क्षेत्र के रूप में सार्वजनिक परिसम्पत्तियों को बेच देने एवं उनका विखण्डन कर देने के कारण लोगों के गुस्से से बचने के लिये सरकारी तंत्र एवं प्रचार माध्यमों के द्वारा नित्य प्रतिदिन जानबूझ कर कुत्सा प्रचार अभियान चलाया जा रहा है। इसके अन्तर्गत कहा जाता है कि ''सार्वजनिक क्षेत्र के लोग काम नहीं करते'', ''सार्वजनिक उपक्रम घाटे पर चलते हैं और इसलिये वे सार्वजनिक धन का अपव्यय करते हैं,'' इत्यादि। ये सभी बातें उसी विषाक्त प्रचार अभियान का अभिन्न अंग हैं। पिछले वर्ष सी आइ आइ द्वारा कराए गए एक सर्वेक्षण में पाया गया कि लाभ अर्जित करने की दृष्टि से शीर्षस्थ दस कम्पनियों में से नौ कम्पनियां सार्वजनिक क्षेत्र की थीं। तथापि, इस तथ्यात्मक प्रकटीकरण के लिये राष्ट्रीय प्रचार माध्यमों में कोई स्थान नहीं है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम आनुपातिक रूप से सरकार को 35 से 40 हजार करोड़ रुपये का भुगतान लाभांशों तथा करों के रूप में करते हैं। किन्तु संसदीय नियंत्रण नहीं होने के कारण उनके द्वारा करों एवं लाभांशों के रूप में सरकार को किये गए भुगतान की राशि के आंकड़ों तथा तथ्यों को जनता की जानकारी में नहीं लाया जाता और लोगों को यह भी बताने का कष्ट नहीं किया जाता कि निजी क्षेत्र से इस मद में अब तक कितनी राशि की वसूली नहीं की गई। निजीकरण हो जाने की स्थिति में इसमें से अधिकांश राशि सरकार के राजकोष में जमा नहीं होगी। इसके फलस्वरूप विकास कार्य तथा योजनाबद्ध व्यय रुक जाएगा और मुद्रा स्फीति अत्याधिक हो जाएगी।

केंद्र में सत्तासीन सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विरुद्ध निरंतर भ्रामक प्रचार करके उनकी छवि धूमिल कर रही है। मानों सरकार ही राष्ट्रीय हित में सार्वजनिक क्षेत्र की रक्षा कर रही हो, इस प्रकार का प्रभाव देश की जनता में दिया जा रहा है। यह प्रभाव भी डालने के लिये प्रयास किये जा रहे हैं कि यह तो इन संगठनों (सार्वजनिक उपक्रमों) में काम करने वाले कर्मचारियों के रोजगारों को बचाने का आंदोलन है। निजी तथा भूमण्डलीय पूंजी के सहयोग से सरकार इस प्रक्रिया में इस देश की जनता को इस संघर्ष के प्रति उदासीन बनाने के लिये प्रयत्नरत है जबकि यह संघर्ष वास्तव में देश की आर्थिक सम्प्रभुता तथा लाखों लाख बेरोजगार युवकों के लिये अधिक रोजगारों का सृजन करने के उद्देश्य से चलाया जा रहा है। सरकार नहीं चाहती कि लोग इस सच्चाई को जानें और इसी लिये सार्वजनिक क्षेत्र के विरुद्ध यह कुत्सा अभियान बेरोकटोक चला कर लोगों में गलत सूचनाएं फैलाई जा रही हैं।

ऊर्जा क्षेत्र का निजीकरण

निजीकरण के दुष्प्रभावों को समझने के लिये यह समझना महत्वपूर्ण है कि इससे कौन से उद्देश्यों की पूर्ति होती है, इसका दुष्प्रभाव क्या होगा, और इसके परिणामस्वरूप किस प्रकार का परिवर्तन होने जा रहा है। निजीकरण के फलस्वरूप ऊर्जा क्षेत्र की स्थिति क्या हुई, इसका उदाहरण हम नीचे दे रहे हैं।

वे उद्देश्य जिन्हें स्वतंत्र भारत ऊर्जा क्षेत्र में प्राप्त करना चाहता था:

* उद्योग को उन मूल्य दरों पर विद्युत आपूर्ति करना जिसे वह चुका सके ताकि उद्योग प्रतिस्पर्धी बना रह सके।

* ग्रामीण एवं शहरी मलिन क्षेत्रों के लिये बिजली पहुंचाना और इसका मूल्य चुकाने की क्षमताओं से ऊपर उठ कर आर्थिक दृष्टि से अलाभकारी क्षेत्रों एवं लोगों को बिजली उपलब्ध कराना।

* आत्म निर्भरता लाना और इसके लिये प्रोत्साहन देना।

* पूंजी तथा संसाधनों के अभाव की स्थिति के रहते हुए जटिलताओं से भरे बहुलवादी समाज में क्षेत्रीय सहयोग को सुनिश्चित बनाना।

* उद्योग, रेल परिवहन तथा संचार के विकास एवं प्रगति में सहायता देना।

* ऊर्जा के मूलभूत स्वदेशी संसाधनों को अधिक से अधिक उपयोग में लाना।

* बिजली को खाद्य सुरक्षा का मेरुदण्ड बनाना—जो बिजली के सिंचाई पम्पिंग सैटों पर आधारित हो, विशेष रूप से भारत द्वारा पी एल-480 के अन्तर्गत अमरीका से निर्यात किये गये गेंहू पर आश्रित रहने जैसी अपमानजनक स्थिति को झेलने के पश्चात् ऐसा करना आवश्यक हो गया था। इस उद्योग की विफलता का परिणाम न केवल बिजली के संकट के रूप में निकलेगा अपितु देश की खाद्य सुरक्षा भी खतरे में पड़ जाएगी।

विश्व बैंक की नव-उदारवादी विचारधारा के अन्तर्गत ऊर्जा क्षेत्र में जारी 'सुधारों' के उद्देश्य

* बहुराष्ट्रीय निगमों को इस योग्य बनाना कि वे विश्व की सम्पूर्ण ऊर्जा व्यवस्था को प्रभावशाली ढंग से अपने नियंत्रण में ले सकें।

* बड़े बड़े बहुराष्ट्रीय निगमों का निर्माण करना जो प्रभावशाली ढंग से विश्व की सम्पूर्ण विद्युत प्रणाली को अपने नियंत्रण में ले सकें।

* राज्य का खात्मा हो इसे सुनिश्चित बनाया जाए और पूंजी की सघनता वाले इस उद्योग की धन सम्बन्धी सभी आवश्यकताएं अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी द्वारा पूरी की जाएं तथा वह उस पर आधारित हो और वह अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी द्वारा ही नियंत्रित हो।

* निजी लाभों को अधिक से अधिक बढ़ाना।

* यह अनिवार्य सार्वजनिक सेवा केवल उन्हीं लोगों को उपलब्ध कराना जो इसके लिये भुगतान कर सकते हों।

* ऊर्जा की सीमा रहित प्रवाह व्यवस्था बनाना जो किसी राष्ट्रीय सीमा की परवाह न करे, वह केवल पूंजी के प्रवाह की परवाह ही करे।

* विकासशील देशों पर शक्तिशाली औद्योगिक राष्ट्रों का राजनीतिक नियंत्रण हो, इसे सुनिश्चित बनाना।

यह देखा जा सकता है कि 'कार्य दक्षता' में सुधार लाने की दुहाई देकर जिन सुधारों को लागू किया जा रहा है उनका परिणाम वास्तव में उलटा ही हो रहा है।

सरकारी विभागों तथा संस्थानों का नैगमकरण

भारत सरकार सार्वजनिक सम्पत्ति को निजी क्षेत्र तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की झोली में डाल देने के लिये नग्न रूप में सरकारी विभागों एवं संस्थानों का नैगमकरण

कर रही है। सरकारी विभागों को पूंजी-विनिवेश की नीति के माध्यम से बेचा नहीं जा सकता। उनका नैगमकरण कर देने के फलस्वरूप सरकार को नैगमकृत विभागों में उनकी सम्पत्ति को मिट्टी के मोल निजी पूंजी के पास बेच देने का अवसर मिल जाएगा तथा उसे अपने मनोरथ पूरे करने में सहायता मिलेगी।

तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग जैसे बड़े संस्थान इस प्रयास का पहला शिकार बने थे। इस निगम को भी वही नाम एवं रूप दिया गया अर्थात् 'तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम'। इस प्रक्रिया में दूरसंचार विभाग को भी हाल ही में निगम के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। राज्य विद्युत बोर्डों, रेलवे एवं प्रतिरक्षा मंत्रालयों के अन्तर्गत संचालित कारखानों को भी निगमों में बदल देने के लिये प्रयास किये जा रहे हैं। अत: केंद्रीय सरकार सार्वजनिक परिसम्पत्तियों को निजी पूंजी के हाथों में सौंप रही है। इन संस्थानों ने अतीत में राष्ट्र निर्माण की भूमिका निभाई है, अब विदेश तथा स्वदेशी निजी पूंजी को अवसर प्रदान किया जा रहा है कि वे राष्ट्र का निर्माण करने की अपेक्षा स्वयं अपना निर्माण कर लें।

सेवा क्षेत्र

विदेशी/बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को उत्पादन क्षेत्र अथवा मैन्युफेक्चरिंग तथा पूंजीगत सामग्री के क्षेत्र में पूंजी का निवेश करने में अधिक रुचि नहीं है क्योंकि उनकी मुख्य रुचि सेवा तथा आंतरिक संरचना (ढांचा) के क्षेत्र तथा विशेष रूप से वित्तीय क्षेत्र में धन का निवेश करने में है। भारत सरकार ने साम्राज्यवादियों/नव-उपनिवेशवादियों के निदेशों के अन्तर्गत पहले ही बीमा क्षेत्र का निजीकरण कर डाला है। उसने राष्ट्रीयकृत बैंकों के 67 प्रतिशत शेयर निजी निवेशकों को बेच देने के अपने निर्णय की घोषणा भी कर दी है। ये कदम देश के आर्थिक विकास की दिशा में उठाए जा रहे हैं, यह उनका दावा है। किन्तु वे चालाकी के साथ साधारण व्यक्ति पर इन निर्णयों के फलस्वरूप पड़ रहे विषम दुष्प्रभावों को छुपा लेते हैं।

राष्ट्रीयकृत बैंकों के लिये प्राथमिकता वाले क्षेत्रों जिनमें गरीब तथा सीमांतक किसान, दस्तकार इत्यादि आ जाते हैं, बेरोजगारों के लिये स्व:रोजगार की योजनाओं, कुटीर एवं लघु उद्योगों, छोटे व्यापारियों को ब्याज की न्यूनतम दरों पर ऋण उपलब्ध कराना अनिवार्य बना दिया गया था। निजी निवेशक सदा सुपर लाभ प्राप्त करने की होड़ में लगे रहते हैं। इन्हें समाज के प्रति अपने दायित्वों की चिन्ता कदापि नहीं होती। निजीकरण का युग शुरू हो जाने के पश्चात् निजी बैंकों के लिये इस प्रकार की कोई बाध्यता नहीं रहेगी और प्राथमिकता वाले क्षेत्र के लिये ऋण उपलब्ध कराने

की सुविधा पूर्णतया समाप्त हो जाएगी।

बैंकों का निजीकरण हो जाने के पश्चात् अधिकांश बैंक विदेशी पूंजी के नियंत्रण में चले जाएंगे। उनका प्रमुख उद्देश्य हमारे देश के औद्योगिकीकरण के लिये योगदान देने की अपेक्षा विदेशी पूंजी के हितों की रक्षा करना होगा। अत: बैंकों का नियंत्रण करने वाले विदेशी हित हमारे देश के औद्योगिकीकरण का नियमन भी करने लगेंगे। उदाहरणार्थ, यदि हमारे देश में कोई ऐसा उद्योग लगाया या विकसित किया जाता है जिससे विदेशी/बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा तैयार किये गए उत्पादों के विपणन में बाधाएं उत्पन्न हों तब उस स्थिति में उस उद्योग को विदेशी हितों के नियंत्रण वाले बैंकों से सहायता प्राप्त नहीं होगी। तथापि, जब एक भारतीय कम्पनी विदेशी/बहुराष्ट्रीयों द्वारा तैयार किये गए उत्पादों के लिये विपणन कार्य करेगी तब इस प्रक्रिया को बदल दिया जाएगा। इसलिये स्वदेशी उद्योग को विकसित करने की सम्भावनाओं पर विषम दुष्प्रभाव पड़ेगा अर्थात् वे अत्यंत प्रतिबंधित हो जाएंगी।

वर्तमान में, राष्ट्रीयकृत बैंक तथा बीमा कम्पनियां लोगों की बचतों के फलस्वरूप जमा हुए अपने धन का निवेश विकास एवं रोजगार सृजन के लिये अवसर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से करती हैं। यदि विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू टी ओ) के साथ समझौते के अनुसार इन संस्थानों का निजीकरण हो जाता है तब उस स्थिति में देश के भीतर जुटाए गए धन का निवेश उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये करने की कोई शर्त उन पर लागू नहीं की जा सकेगी। इस लिये हमारे संसाधनों का उपयोग एवं निवेश देश के बाहर मुक्त रूप से किया जा सकेगा। हमारे ही मूल्य पर विदेश में पूंजी का गठन होगा।

आयात-उदारीकरण का लाभ किसे मिलता है?

वर्तमान सरकार आयातों का उदारीकरण बस यूं ही कर रही है। लोगों की एक श्रेणी सस्ती आयातित वस्तुओं की उपलब्धता पर प्रसन्न है। किन्तु वे लोग नहीं जानते कि इस नीति का कितना गम्भीर दुष्प्रभाव एक साधारण व्यक्ति के जीवन पर पड़ेगा या पड़ रहा है। मात्रात्मक प्रतिबंधों को हटा लिये जाने के फलस्वरूप इस्पात, कोयला, उर्वरक, मशीनरी इत्यादि से लेकर सिले सिलाए वस्त्रों, मुरमुरा, आटा, गेहूं तथा यहां तक कि टमाटर जैसी उपभोक्ता वस्तुएं भी खुले रूप में विदेश से भारत के बाजार में आ सकेंगी। इन वस्तुओं पर आयात शुल्क पूर्णतया अथवा पर्याप्त मात्रा में हटा देने तथा दूसरी ओर आबकारी शुल्क में वृद्धि किये जाने के फलस्वरूप आयातित वस्तुएं भारतीय उत्पादों की तुलना में सस्ती हो गई हैं।

जब इन वस्तुओं का उत्पादन देश के भीतर होता है तब हमारे लोगों को रोजगार मिलता है, किन्तु जब इन वस्तुओं का आयात होने लगेगा तब उन्हें रोजगार नहीं मिल सकेगा। इस्पात, कोयला, मशीनरी, उर्वरकों इत्यादि के आयात में वृद्धि होने के साथ ही साथ रोजगारों की क्षति भी बढ़ती चली जाएगी। संगठित उद्योग के लिये भी यह स्थिति वरदान नहीं है। यदि सिले-सिलाए वस्त्र देश के बाहर से मंगाए जाते हैं तब इन क्षेत्रों में रोजगार की क्षति भी साथ ही साथ होगी। इसलिए उद्योग, कृषि, सेवा क्षेत्र इत्यादि सभी को रोजगारों की क्षति तथा नये रोजगारों को सृजन नहीं होने के गम्भीर संकट को झेलना पड़ेगा।

असमान प्रतिस्पर्धा

विकासशील देश पूर्वत: उन (साम्राज्यवादी देशों) पर निर्भर रहें इसलिये उन्हें नवीनतम प्रौद्योगिकी सुलभ नहीं कराई जाती; यह प्रौद्योगिकी साम्राज्यवादियों के नियंत्रण में ही रहती है। नयी प्रौद्योगिकी के नाम पर वे जो पुरानी प्रौद्योगिकी विकासशील देशों को उपलब्ध करा रहे हैं, वह भी हस्तांतरित नहीं की जा सकती। प्रौद्योगिकीय उन्नति अब भी बुर्जुआजी के लिए प्रमुख कार्यसूची अथवा एजेंडा बनी हुई है। यही कारण है कि वे विकासशील देशों को बाजार के लिये अपने साथ असमान प्रतिस्पर्धा में डालना चाहते हैं।

जहां औद्योगिक देश बाजार, पूंजी, कानूनी संरचना श्रम सम्बन्धों इत्यादि विषयों पर भूमण्डलीयकरण के पक्ष में जोरदार तर्क दे रहे हैं वहीं वे प्रौद्योगिकी का भूमण्डलीयकरण करने के मामले में पूर्णतया मौन हैं। आधुनिक प्रौद्योगिकी पूर्वत: उन्नत पूंजीवादी देशों की इजारेदारी बनी हुई है और वे इस शक्तिशाली शस्त्र के उपयोग करके और वह भी असमान प्रतिस्पर्धा में शेष अर्थात् पूरे विश्व को ही जीत लेना चाहते हैं।

विकासशील देशों को प्रौद्योगिकी के निर्यात का नियमन करने के लिये जी-7 देशों के अपने दिशा निदेश हैं; इन्हें वे **'चोगम रेगुलेशन'** कहते हैं। विकासशील देशों को कौन-सी पीढ़ी की प्रौद्योगिकी का निर्यात किया जाए इसका निर्णय इस समन्वय समिति द्वारा लिया जाता है। इन दिशा निदेशों के अनुसार संचार, कम्प्यूटर, मशीनी उपकरण जैसी नवीनतम प्रौद्योगिकी के उत्पाद विकासशील देशों को उपलब्ध नहीं कराए जाते। यदि छोड़ी जा चुकी पुरानी प्रौद्योगिकी का ही निर्यात किया जाएगा और वह भी अहस्तांतरणीय बनी रहेगी तब उस स्थिति में समान प्रतिस्पर्धा कहां हो सकेगी? भारत सरकार जिसने भूमण्डलीयकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण के

नुस्खे बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर लिये थे, ने कभी भी प्रौद्योगिकी का भूमण्डलीयकरण करने की मांग नहीं की थी।

निर्यात प्रसंस्करण अंचलों का उभरना

साम्राज्यवादी हमलों के एक भाग के रूप में लगभग 1000 निर्यात प्रसंस्करण अंचल (ई पी जैड्स) पूरे विश्व भर में उभर चुके हैं। वे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सघन शोषण के उपकरण बन चुके हैं। भारत में इसी प्रकार 10 निर्यात प्रसंस्करण अंचल उभर चुके हैं, इन अंचलों को व्यावहारिक रूप से देश के सभी श्रम कानूनों के भय से मुक्त कर दिया गया है। निर्यात प्रसंस्करण अंचल बहुराष्ट्रीय निगमों के लिये सस्ती मजदूरी का स्रोत बन गए हैं; वे बहुराष्ट्रीय निगमों के शस्त्रागार में सम्मिलित एक शस्त्र बन चुके हैं। भारतीय पूंजीपति भी अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने के लिए इन अंचलों से लाभान्वित होते हैं; वे इनके माध्यम से श्रमिकों का जबरदस्त शोषण करते हैं; उनकी शोषणकारी कार्रवाईयां छिपी रहती हैं क्योंकि इन अंचलों में श्रमिक संघों को काम करने की अनुमति नहीं दी जाती।

अनेक पूंजीवादी देशों में पूंजीपतियों द्वारा अपने लाभ के लिए जेलों में बंद श्रमिकों का उपयोग करना एक नियमित क्रिया बन चुकी है। केवल अमरीका में ही पूंजीपतियों को जेलों में बंद जिन कैदियों का उपयोग श्रमिकों के रूप में करने की अनुमति दी गई है; उन्हें देश के कानूनों के अनुसार देय वेतनों का मात्र छठा भाग ही पारिश्रमिक के रूप में दिया जाता है। कैदी श्रमिक प्रति वर्ष 9 अरब अमरीकी डालर मूल्य की वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। क्या इससे अधिक शोषण और कहीं हो सकता है? बहुराष्ट्रीय कम्पनियां तथा समृद्ध राष्ट्र भारत और अन्य विकासशील देशों में तो श्रम सम्बन्धी मानकों की खराब स्थिति तथा बाल मजदूरी की संवृत्ति की दुहाई देते नहीं थकते, किन्तु उनके अपने घर में क्या होता है, इस पर वे चुप्पी साधे रखते हैं।

क्या भूमण्डलीय बाजार सभी के लिये खुला है?

बाजार के सम्बन्ध में आप क्या कहेंगे? क्या वह वास्तव में ही मुक्त है? साम्राज्यवादी हमें तो अपने बाजार उनके उत्पादों के लिये खोलने के लिये विवश कर रहे हैं किन्तु उन्होंने स्वयं अपने बाजारों को हमारे उत्पादों के लिये नहीं खोला है। पर्यावरण तथा श्रम सम्बन्धी मानकों का बावेला मचा कर विकसित देश विकासशील देशों को विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू टी ओ) के माध्यम से ऐसे अनुच्छेदों का पालन करने के लिये विवश करते हैं, अथवा उन पर दबाव डालते हैं

जिनके फलस्वरूप चाय, सिले सिलाए वस्त्रों, कालीन जैसे उत्पादों जो प्रौद्योगिकी सघनता वाले नहीं होते, का विकसित देशों के बाजारों में प्रवेश निषेध हो जाता है। अभी हाल ही में भारत सरकार ने अमरीकी सरकार के साथ सम्पन्न द्विपक्षीय समझौते के अन्तर्गत अपना बाजार अमरीका के 714 उत्पादों के लिये खोल दिया और इस सम्बन्ध में सभी प्रकार के प्रतिबंध समाप्त कर दिये गए हैं, वह (भारत सरकार) और 715 उत्पादों के लिये अपना बाजार अगले वर्ष खोलने पर सहमत हो गई है। वहीं अमरीका सरकार ने कम से कम वर्ष 2005 तक अपने देश के लिये आयातों पर प्रतिबंध जारी रखने की घोषणा की है। वास्तव में, भारतीय निर्यातों के मामले में यूरोपीय तथा अमरीकी बाजारों में प्रतिबंध बढ़ रहे हैं। पिछले एक दशक की उदारीकरण की अवधि में विदेश व्यापार के मामले में भारत का कार्य प्रदर्शन अत्यधिक विषमताओं की त्रासद कथा सुनाता है। अर्थव्यवस्था के द्वार पूर्णतया खोल देने तथा वस्तुओं एवं वित्तीय अन्तर्वाह पर सभी प्रतिबंधों को हटा दिये जाने पर भी निर्यात व्यापार में भारत का भाग निरंतर सिकुड़ रहा है। यहां तक कि ऊन, चाय, चमड़ा, परिष्कृत चर्म उत्पाद, मानव निर्मित धागा इत्यादि वस्तुओं के मामले में भी जहां निर्यात बाजार में भारत का आधिपत्य था, निर्यातों के भारत के भाग में भारी कमी आ चुकी है; मैन्युफेक्चर्ड तथा इंजीनियरिंग वस्तुओं की तो बात ही मत करिए। यहां तक कि प्राथमिक उत्पादों के मामले में भी वर्ष 1999 तक पिछले तीन वर्षों में निर्यात बाजार में भारत का भाग निरंतर कम होता रहा है।

जहां एक ओर संरक्षणवाद की हठधर्मिता बढ़ रही है तथा विकासशील देशों की ओर से डम्पिंग विरोधी कार्रवाईयां की जा रही हैं वहीं दूसरी ओर विकासशील देशों पर लादा गया ड्यूटी मुक्त आयातों का उदारीकरण बढ़ता रहा है जिसके चलते स्वदेशी उद्योगों का गला घोंटा गया। क्या इसे किसी भी प्रकार और किसी भी स्थिति में विकासशील एवं विकसित देशों के मध्य समान एवं न्यायोचित प्रतिस्पर्धा के अनुकूल "एक समान स्तर" माना जा सकता है? हाल ही में संशोधित पेटेंट (एकस्व) नियमों का अनुशीलन करने पर यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है।

पेटेंट कानून में संशोधन : किस के लाभ में?

भारत के अपने पेटेंट (एकस्व) कानून हैं, इन कानूनों के फलस्वरूप बीजों, औषधियों, दवाओं इत्यादि कुछ विशेष क्षेत्रों में समुचित उत्पादन एवं प्रौद्योगिकीय के शोध कार्यों को प्रोत्साहन मिला है। शोध एवं विकास की गतिविधियों को बढ़ावा देने तथा सामान्य रूप से लोगों के हितों एवं विशेष रूप से उद्योग तथा कृषि क्षेत्र के हितों की रक्षा करने के लिये अनेक वस्तुओं को उत्पाद पेटेंट (एकस्व) संरक्षण से

मुक्त कर दिया गया था। किन्तु पेटैंट कानूनों में संशोधन के पश्चात् विश्व व्यापार संगठन के निदेशानुसार उन वस्तुओं पर भी उत्पाद पेटैंट लागू कर दिया गया है। अत: भारत अब अपनी स्वदेशी शोध एवं विकास गतिविधियों का और अधिक विकास करने तथा नये शोधों का प्रयोग मैन्युफेक्चरिंग की गतिविधियों में करने के सभी अवसर खोता चला जा रहा है।

मानव विकास रिपोर्ट 2000 में विचार व्यक्त किया गया है : ''व्यापार सम्बद्ध बौद्धिक सम्पदा अधिकार (ट्रिप्स) समझौते के अन्तर्गत उत्पादन प्रक्रिया से लेकर उत्पाद तक लागू किये गए पेटैंट कानूनों की कार्रवाई के चलते स्थानीय कम्पनियों के लिये सस्ती जीवन दायिनी दवाएं जैसे कैंसर तथा एच आई वी/एड्स के लिये, बनाने की सम्भावनाओं में नाटकीय ढंग से कमी आ गई है। भारत में स्थानीय उत्पादन के चलते दवाओं के मूल्य पड़ोसी देशों में दवाओं के मूल्यों के स्तर से बहुत ही कम रखे गये थे। उदाहरणार्थ 1998 में (पेटैंट अधिनियम में परिवर्तन से पूर्व) एड्स निरोधक दवा फ्लूकैनाज़ोल की दस गोलियां (150 मिली ग्राम) भारत में 55 अमरीकी डालर में मिलती थीं जबकि मलेशिया में यही गोलियां 697 अमरीकी डालर में, इंडोनेशिया में 703 अमरीकी डालर तथा फिलीपीन्स में 817 अमरीकी डालर मूल्य पर मिलती थीं।''

रिपोर्ट में आगे बताया गया है : ''व्यापार सम्बद्ध बौद्धिक सम्पदा अधिकार (ट्रिप्स) समझौते के फलस्वरूप प्रौद्योगिकीय दृष्टि से उन्नत देशों को लाभ पहुंचा है। औद्योगिक देशों के पास सभी पेटैंटों का 97 प्रतिशत भाग है जबकि भूमण्डलीय निगमों के पास सभी प्रौद्योगिकीय एवं उत्पाद पेटैंटों का 90 प्रतिशत भाग है। विकासशील देशों को ट्रिप्स समझौते के फलस्वरूप प्राप्त कठोर पेटैंट संरक्षण से बहुत कम लाभ हुआ है क्योंकि शोध एवं विकास कार्य करने की उनकी क्षमताएं बहुत ही कम हैं। नयी दवा के लिये शोध एवं विकास कार्य पर लगभग 15-20 करोड़ डालर की अनुमानित लागत आती है किन्तु किसी भी विकासशील देश के पास दवाओं की बिक्री का आकार 40 करोड़ अमरीकी डालर भी नहीं है।'' निश्चित रूप से पेटैंट कानून का संशोधन भारत के हितों के प्रतिकूल सिद्ध हुआ है और इसने केवल विकसित देशों तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हितों की ही सेवा की है।

आर्थिक नाकाबंदी तथा प्रतिबंध

जहां साम्राज्यवादी तथा बहुराष्ट्रीय निगम एक ओर मुक्त व्यापार की बातें

करते हैं वहीं दूसरी ओर वे साम्राज्यवादी हथकण्डों का विरोध करने वाले देशों के विरुद्ध आर्थिक नाकाबंदी के शस्त्र का उपयोग करते हैं। क्यूबा, लीबिया, इराक तथा उत्तरी कोरिया साम्राज्यवादियों के घृणित हथकण्डों की जीती जागती उदाहरणें हैं। भारत सहित अनेक देशों पर लागू किये गये प्रतिबंध भूमण्डलीय स्तर पर साम्राज्यवादियों की दादागिरी चलाने तथा उसे स्थापित करने के ही प्रकटीकरण हैं। अमरीकी साम्राज्यवाद विश्व व्यापी निंदा होने पर भी बिना किसी भय के खुलकर इस प्रकार के हथकण्डे जारी रख रहा है।

कोई विकल्प नहीं अर्थात् 'टिना' कारक

तथाकथित सुधारवादी समय समय पर जिस सिद्धांत का प्रचार करते रहे हैं या कर रहे हैं, उसे अब सर्वत्र 'टिना' कारक के रूप में जाना जाता है। ''इसका कोई विकल्प नहीं है'' क्योंकि विकास के लिये धन नहीं है। प्रधानमंत्री कहते हैं कि हमें कठोर निर्णय लेने होंगे; इसका अर्थ है गरीबों तथा निम्न मध्यम श्रेणी श्रमिक वर्ग के लिये दी जाने वाली सब्सिडियों में कटौती; चावल, गेहूं, चीनी, मिट्टी का तेल तथा अन्य मूलभूत जीवनोपयोगी अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि; बजट घाटा पूरा करने के लिये सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों ब्लू चिप कम्पनियों को मिट्टी के मोल बेच डालना।

यह बात कहां तक सत्य है ? यदि यह संसाधनों का अभाव है तब सरकार को लाखों करोड़ रुपये का काला धन बाहर निकलवाने से किसने रोक रखा है जो देश के कानूनों को पांवों तले रौंद कर मुट्ठी भर लोगों द्वारा इकट्ठा किया गया है। सरकार के अपने अनुमान के अनुसार राष्ट्रीयकृत बैंकों में 58,000 करोड़ रुपये की धन राशि बट्टेखाते पड़ी परिसम्पत्तियों के रूप में परिवर्तित हो चुकी है क्योंकि कार्पोरेट क्षेत्र के धन्ना सेठों द्वारा इन बैंकों से लिया गया ऋण वापस नहीं किया गया। ये चूककर्ता साधारण व्यक्ति नहीं हैं अपितु बहुत बड़े लोग हैं और यही लोग पूरे उत्साह के साथ इन सुधारों के समर्थक बन बैठे हैं।

कुख्यात प्रतिभूति घोटाले के सूत्रधार हर्षद मेहता पर अब भी बैंकों की 200 करोड़ रुपये से अधिक धन राशि की देनदारी है। किन्तु देश के प्रधानमंत्री तथा वित्त मंत्री यूरिया के मूल्य बढ़ा कर किसानों को दी जा रही सब्सिडी कम करने के लिये शोर मचा रहे हैं। यूरिया बनाने वाली कम्पनियों से 4000 करोड़ रुपये की वसूली करने के लिये कोई कार्रवाई नहीं की गई जो उन्होंने उत्पादन क्षमताओं के हथकण्डे अपनाकर इकट्ठे किये थे।

महा लेखा नियंत्रक (कैग) की रिपोर्ट के अनुमान के अनुसार लाइसेंस शुल्क की मद में राजकोष को 5000 करोड़ रुपये से अधिक की क्षति हुई है; यह क्षति सैलुलर फोन आपरेटर्स के मामले में लाइसेंस शुल्क को राजस्व भागीदारी व्यवस्था (रैविन्यू शेयरिंग सिस्टम) के रूप में अंतरित करने सम्बन्धी सरकार द्वारा लिये गए निर्णय के फलस्वरूप हुई। इससे लाभान्वित कौन हुआ है? टेलीफोन उपभोक्ता नहीं अपितु बड़े कारोबारी घराने। ठीक इसी समय वित्त मंत्री महोदय कटघरे में खड़े हो गए हैं; उन पर आरोप है कि उन्होंने मार्शियस में अपना जाली पंजीकरण कराने वाली 19 विदेशी कम्पनियों पर 2000 करोड़ रुपये का पूंजी लाभ कर लगाने से कराधान अधिकारियों को रोका। यह सूची अनंत है, इसमें ''संख्या वाहिनी'' में 1400 करोड़ रुपये का निवेश करने सम्बन्धी सरकार का अपना निर्णय भी सम्मिलित है। इन विषयों पर ''कठोर'' निर्णय नहीं लिये गए। कठोर निर्णय केवल जन साधारण के मामले में ही लिये जाते हैं और वह भी बिजली, मिट्टी के तेल, डीज़ल, रसोई गैस, चावल, गेहूं इत्यादि के मूल्य बढ़ा कर।

विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा निदेशित तथाकथित 'सुधारों' का विकल्प निश्चित रूप से देश के प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों पर आधारित आत्म निर्भर आर्थिक विकास के माडल में निहित है। एक मजबूत सार्वजनिक क्षेत्र, बड़े एवं छोटे उद्योगों के मध्य जुड़ाव, शोध एवं विकास कार्यों के माध्यम से स्वदेशी एवं उपयुक्त प्रौद्योगिकी का विकास, आयातों का विकल्प, विदेशी निवेशकों के लिये भारतीय वस्तुओं का निर्यात करना एक अनिवार्य शर्त हो इत्यादि इस दिशा में उठाए जाने योग्य कुछ मूलभूत कदम हैं; इनके साथ ही साथ और अच्छे ढंग से संसाधन जुटाने तथा काले धन को बाहर निकाल कर आर्थिक अनुशासन लाकर, करों तथा बैंक ऋणों की बकाया राशियां वसूल करके, विभिन्न 'घोटालों' के द्वारा देश के दुर्लभ संसाधनों का क्षरण अथवा लूट जो वर्तमान में 'सुधार' प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग बन चुके हैं, को रोक कर इन तथाकथित 'सुधारों' का विकल्प ढूंढा जा सकता है। 'निर्यातोन्मुखी' अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने की अपेक्षा भूमि सुधारों के द्वारा देश की गरीब श्रेणियों की क्रय शक्ति को बढ़ा कर देशी बाजार को मजबूत बनाना चाहिये और उसके साथ साथ ऊर्जा का विकेन्द्रीयकरण किया जाना चाहिये तथा योजना में जनता की भागीदारी को सुनिश्चित बनाना चाहिये।

इसका विकल्प तो है किन्तु इसके लिये आवश्यक ''इच्छा शक्ति'' का सर्वथा अभाव है। ''टिना'' का कारक तो केवल सरकार के लिये है; वह सरकार जो नैगम घरानों की है, जो नैगम घरानों द्वारा चलाई जाती है और नैगम घरानों के लिये चलती

है—किन्तु श्रमिक वर्ग तथा देश की जनता के लिये यह कारक कदापि नहीं है।

तथ्यों को दबाने के लिए सुनियोजित अभियान

यदि लोग उपरोक्त दुष्प्रभावों की जानकारी रखेंगे अथवा उन्हें इनका ज्ञान होगा तो वे भूमण्डलीयकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण की सरकारी नीतियों के विरुद्ध रोष व्यक्त करने लगेंगे। यही कारण है कि भूमण्डलीयकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण के प्रचारक इसका सुन्दर चित्रण करके देश की शोचनीय स्थिति की ओर से जनता का ध्यान हटाने का प्रयास कर रहे हैं।

इस देश के राष्ट्रीय प्रचार माध्यम जो अधिकतर औद्योगिक निगमों तथा सरकार के बंधुआ हैं, भूमण्डलीयकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण के प्रश्न पर चलाए जा रहे भ्रांतिपूर्ण कुत्सा अभियान में प्रसन्नतापूर्वक उनके साथ सहयोग कर रहे हैं। इन सुधारों का विरोध करने वाले सभी लोगों विशेष रूप से वामपक्षियों को राष्ट्रीय विकास के मार्ग की बड़ी बाधाओं के रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से एक सुनियोजित प्रचार अभियान चलाया जा रहा है।

ट्रेड यूनियन अधिकारों पर हमले

सत्ताधारी वर्ग ट्रेड यूनियन आंदोलन को हाशिये पर धकेलने के लिये उग्र प्रयास कर रहा है; यह भूमण्डलीयकरण के विश्वव्यापी पक्षों में से एक पक्ष है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की ओर से 11 उन्नत पूंजीवादी देशों में व्याप्त स्थिति का अध्ययन कराया गया है। अपनी रिपोर्ट में उसने विचार व्यक्त किया है कि ट्रेड यूनियन आंदोलन उन सभी देशों में अपना महत्व खोता चला जा रहा है। ट्रेड यूनियन अधिकारों में कटौती करने वाले कानून अधिकांश पूंजीवादी देशों में लागू किये गए हैं।

भारत में भी द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग का गठन श्रम कानूनों को उदारीकृत अर्थव्यवस्था के अनुरूप बनाने के लिये उनमें परिवर्तन करने के उद्देश्य से किया गया है। यह वित्तीय पूंजी के भूमण्डलीय हमले का एक भाग है। इसलिये इस हमले का प्रतिकार करना, ट्रेड यूनियन अधिकारों तथा श्रमिक आंदोलन की उपलब्धियों की रक्षा के अत्यंत महत्वपूर्ण बन गया है।

राजनीतिक मोर्चे पर

विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा अन्य अभिकरणों के माध्यम से

वर्तमान में जारी नव-उदार भूमण्डलीयकरण का उद्देश्य पूरे भूमण्डल में साम्राज्यवादियों की आर्थिक दादागिरी स्थापित करना है—इस पर साम्राज्यवादी शक्तियों का पूर्ण बर्चस्व है। दूसरे शब्दों में विकासशील देशों में आत्मनिर्भर आर्थिक विकास की प्रक्रिया को उलट देना नव-उदार भूमण्डलीयकरण का एकमात्र लक्ष्य है। सोवियत संघ का पराभव होने के पश्चात् साम्राज्यवादी शक्तियों की दादागिरी अथवा एकाधिकार स्थापित करने के इस प्रकार के प्रयास को विशेष गति एवं बल मिला है।

पूंजीवाद का संकट गहरा होते चले जाने की पृष्ठभूमि में साम्राज्यवादी-शक्तियों के केन्द्रों की ओर से राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों ही मोर्चों पर हमले बढ़ रहे हैं। इस प्रकार विकासशील देशों की सम्पूर्ण व्यवस्था ही उनकी मुट्ठी में आ चुकी है।

वामपक्ष के नेतृत्व वाली सरकारों की भूमिका

पश्चिम बंगाल, केरल तथा त्रिपुरा में वामपक्ष के नेतृत्व वाली सरकारें देश के संविधान के मूल ढांचे में रह कर जहां तक सम्भव हो सका आत्म निर्भर गरीब पक्षीय, श्रमिक वर्ग पक्षीय नीतियों के वैकल्पिक मार्ग का अनुसरण करने का भरसक प्रयास करती रही हैं। ये वही सरकारें हैं जिन्होंने भूमि सुधार किये थे, सत्ता का विकेन्द्रीयकरण किया था तथा राज्य की योजना में लोगों को सहभागी बनाया था। वाम मोर्चे के नेतृत्व वाली सरकारें अभी तक अपने अपने राज्य बिजली बोर्डों को अपने नियंत्रण में रख सकी हैं जबकि भारत सरकार ने लाभ पर चलने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों को ठिकाने लगाने अथवा बेच देने और बीमार इकाईयों को बंद कर देने के लिये एक नया 'विनिवेश' विभाग बना डाला है। इसके विपरीत पश्चिम बंगाल सरकार ने 'औद्योगिक पुनर्निमाण' के नाम से एक विभाग सार्वजनिक तथा निजी दोनों क्षेत्रों के पुनरुद्धार में सहायता देने के लिये बनाया हुआ है। इसके फलस्वरूप ही इस अवधि में राज्य सरकार के अन्तर्गत चलने वाली कुछ बीमार औद्योगिक इकाईयों को लाभ पर चलने वाली इकाईयों के रूप में परिवर्तित किया जा सका है। 'औद्योगिक बीमारी' उन प्रमुख समस्याओं में से एक है जिसका सामना श्रमिक वर्ग को करना पड़ रहा है; पश्चिम बंगाल की वाम मोर्चा सरकार ने कामबंदी, तालाबंदी अथवा 'काम के निलम्बन' के अन्तर्गत आने वाली औद्योगिक इकाईयों के प्रभावित श्रमिकों को प्रति मास 500 रुपये देने शुरू किये हैं। केरल में केरल निर्माण श्रमिक कल्याण योजना शुरू की गई है जिससे निर्माण कार्यों में लगे 9 लाख से अधिक श्रमिक लाभान्वित हुए हैं। पश्चिम बंगाल की राज्य सरकार असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिये भविष्य निधि योजना लागू कर रही है, ये श्रमिक सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग की एक बहुत बड़ी श्रेणी हैं जो अभी तक वर्तमान श्रम

कानूनों के किसी भी प्रावधान के अन्तर्गत नहीं आते हैं। इन सरकारों ने ट्रेड यूनियन अधिकारों की रक्षा की है और हड़ताली श्रमिकों पर एस्मा लागू करने से इन्कार कर दिया है।

वाम पक्ष के नेतृत्व वाली सरकारों के इन्हीं वैकल्पिक दृष्टिकोणों ने उन्हें दूसरों की अपेक्षा बेहतर स्थिति में ला खड़ा किया है। आन्ध्र प्रदेश, दिल्ली, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश जैसे जिन राज्यों में 1993-94 से लेकर 1997-98 की अवधि में पूरी शक्ति के साथ विश्व बैंक के माडल का अनुसरण किया गया है; वहां आर्थिक विकास की दर में क्रमश: 43 प्रतिशत, 40.2 प्रतिशत, 35 प्रतिशत तथा 4 प्रतिशत तक की गिरावट आई है। वाम पक्ष के नेतृत्व वाले राज्यों ने प्रगति की अधिकतम दर दर्शाई है जो त्रिपुरा के मामले में 101 प्रतिशत, केरल के मामले में 140 प्रतिशत तथा पश्चिम बंगाल के मामले में 180 प्रतिशत है। इनकी तुलना में उड़ीसा की विकास दर 1.02 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 5.58 प्रतिशत, बिहार में 18 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 22 प्रतिशत, राजस्थान में 50 प्रतिशत, तमिलनाडु में 88 प्रतिशत, कर्नाटक में 85 प्रतिशत तथा गुजरात में 121 प्रतिशत रही। (स्रोत: संसद के शरद ऋतु के सत्र में सरकार का उत्तर)।

आगामी कार्य

इन रुझानों से पूंजीवाद की शक्तियों के द्वारा भूमण्डलीय स्तर पर सामान्य रूप से जन साधारण तथा विशेष रूप से श्रमिक वर्ग के अधिकारों पर आक्रमण करने, उनके अतिक्रमण तथा अन्ततोगत्वा अपना सम्पूर्ण आधिपत्य जमाने के प्रयासों का प्रतिकार करने के लिये वर्ग संघर्षों का अत्यधिक महत्व सिद्ध हो गया है; इसमें संदेह नहीं। भले ही उस देश के शासक कितनी भी व्यर्थ की डींगे क्यों न हांकते रहें।

पूंजी के भूमण्डलीयकरण और जन विरोधी एवं श्रमिक विरोधी हमलों का प्रतिकार भूमण्डलीय स्तर पर हो रहा है; यह बात सत्य है; अभी प्रतिरोध की कार्रवाईयां छिटपुट ढंग से अलग-अलग हो रही हैं। इसलिये श्रमिक वर्ग के भूमण्डलीय प्रतिकार की प्रक्रिया को एक साथ चलाना अनिवार्य रूप से अत्यावश्यक बन गया है। किन्तु वर्ग संघर्ष अनिवार्य रूप से राष्ट्रीय स्तर पर ही शुरू करना होगा।

भारत में श्रमिक वर्ग पिछली शताब्दी के नब्बे के दशक के शुरू से ही इन जन विरोधी नीतियों के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है। तथापि, इसमें वांछित सफलता अभी तक नहीं मिली। सत्ताधारी श्रेणी द्वारा श्रमजीवी जनता में किये जा रहे भ्रांतिपूर्ण

प्रचार के कारण उत्पन्न भ्रांतियों के फलस्वरूप इस संघर्ष में लोगों की व्यापक श्रेणियों को गोलबंद करने में देरी हो रही है।

हमें निश्चित रूप से उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमण्डलीयकरण और उसके साथ साथ इन नीतियों के विनाशकारी परिणामों से श्रमिक वर्ग तथा श्रमजीवी जनता को जागरूक बनाकर साम्राज्यवादी हमले का सफलतापूर्वक प्रतिकार करना होगा। हम इस संघर्ष में श्रमिक वर्ग को एकजुट कर सकते हैं और केवल इस प्रकार के प्रयास करके ही हम निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा फैलाई गई सभी भ्रांतियों को दूर कर सकते हैं।

उत्पादन एक सामाजिक संवृति होती है। उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली अपने अंत की ओर अग्रसर है और उसका अंत अवश्यमेव होगा। साम्राज्यवाद द्वारा किये जा रहे हताशा भरे हमले भी स्वयं में व्यवस्था के संकट का प्रकटीकरण हैं। इस चरण में उसके पतन को सुनिश्चित बनाने के लिये सामाजिक शक्तियों का हस्तक्षेप अनिवार्य हो गया है। सामाजिक विकास को आगे बढ़ाने के लिये प्रौद्योगिकी का सदुपयोग करना अत्यावश्यक है। बुर्जुआजी ने इसका दुरुपयोग किया है और उसने मानवता को असंख्य कष्टों एवं पीड़ाओं की गर्त में धकेला है। किन्तु समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत इसका उपयोग विशाल स्तर पर सामाजिक विकास के लिये किया जाएगा। श्रमिक वर्ग को इसके लिये अवश्यमेव संघर्ष करना होगा।

भूमण्डलीयकरण के विरुद्ध असंतोष बढ़ रहा है और यह असंतोष बुर्जुआजी द्वारा अपनाई गई श्रमिक विरोधी तथा जन विरोधी नीतियों का परिणाम है। किन्तु वह अब भी असंगठित है और वह एकजुट नहीं हुआ है। इसलिये जन असंतोष को पूंजीवादी भूमण्डलीयकरण और अन्ततोगत्वा उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली के विरुद्ध संगठित आंदोलन के रूप में परिवर्तित करना अनिवार्य हो गया है।

वैज्ञानिक समाजवाद इस ऐतिहासिक कार्य को पूरा करने के लिये श्रमिक वर्ग की जागरूकता के स्तर को ऊंचा उठाने तथा उसमें गुणात्मक सुधार लाने के लिये आह्वान करता है।

साम्प्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष

1. लगभग एक शताब्दी से साम्प्रदायिकता हमारे समाज तथा राजतंत्र को प्रभावित करती रही है। ब्रिटिश शासकों द्वारा अपने साम्राज्यवादी शासन को बनाए रखने के उद्देश्य से चलाई गई कुख्यात 'बांटो और राज करो' की नीति ने साम्प्रदायिकता के आधार पर निरंतर चलते रहने वाले राजनीतिक झगड़ों को जन्म दिया। इसके दुष्परिणामस्वरूप थोड़े-थोड़े अन्तराल में साम्प्रदायिक दंगे भड़कने लगे जिनकी परिणति देश के विभाजन के रूप में हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संघ परिवार जिसके केन्द्र में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ है, ने सत्ता में आने के लिये साम्प्रदायिकता के उसी हथियार को थाम लिया और वह स्वयं अपने द्वारा संचालित साम्प्रदायिक दंगों की लम्बी श्रृंखला में बहे रक्त की लम्बी धारा के साथ चलते चलते आज सत्ता की कुर्सी में विराजमान हो गया है; वे साम्प्रदायिक स्थिति को विस्फोटक बनाने पर तुले हुए हैं और साम्राज्यवादियों द्वारा निर्देशित विनाशकारी नीतियों को पूरी निर्लज्जता के साथ लागू करने के प्रयास कर रहे हैं। इस स्थिति की मांग है कि सभी लोकतांत्रिक शक्तियां और विशेष रूप से श्रमिक वर्ग पूरी दृढ़ता के साथ आगे आए और जोरदार हस्तक्षेप करे।

2. साम्प्रदायिकता एक अत्यंत जटिल घटनाक्रम है। इसकी वृद्धि में अनेक कारकों का योगदान होता है और इसके रूप भी अनेक होते हैं। तथापि इसकी अनिवार्य प्रकृति की तीखी अभिव्यक्ति इन शब्दों में हुई है, 'एक ऐसा राजनीतिक सिद्धांत जो राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये धार्मिक-सांस्कृतिक मतभेदों से लाभ उठाता है तथा उनका दुरुपयोग करता है।' हमारे देश में संस्कृति की अपेक्षा धार्मिक कारक का योगदान अधिक होता है, जन चेतना में यही कारक सर्वोपरि होता है, इसी लिये लोगों की चेतना का गलत ढंग से उपयोग करके साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काया जाता है ताकि 'राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा किया जा सके', 'सत्ता की कुर्सी तक पहुंचा जा सके', उसे प्राप्त किया जा सके और यह सत्ता एक बार प्राप्त कर भी ली गई है, और यदि किसी कारण उस तक नहीं पहुंचा जा सकता

तो कम से कम राजनीति के सत्ता संतुलन को अपने पक्ष में किया जा सके।

3. उपरोक्त परिभाषा को देखते हुए और जिसकी पुष्टि स्वयं हमारे अपने अनुभव ने भी की है उसके अनुसार साम्प्रदायिकता में वृद्धि के लिये धर्म उत्तरदायी नहीं है। साम्प्रदायिक शक्तियों ने जो प्रभाव छोड़ा है उसके विपरीत हमारा कोई भी महान धर्म दूसरे धर्मों के अनुयाईयों के साथ घृणा करने तथा उनके विरुद्ध लड़ने की शिक्षा नहीं देता है। हम इस पर विश्वास कर सकते हैं। ये शोषक तथा सत्ताधारी वर्गों की विभिन्न श्रेणियां ही हैं जो धार्मिक शिक्षाओं को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करती हैं और लोगों की सच्ची धार्मिक भावनाओं के साथ खिलवाड़ करके उन्हें साम्प्रदायिक चेतना में बदल देती हैं। अत: हमारे लिये इस मामले में स्पष्ट होना महत्वपूर्ण हो जाता है और हम यह बात भी स्पष्ट कर दें कि एक दूसरे का विरोध करने वाली साम्प्रदायिकता से यह अभिप्राय कदापि नहीं लिया जा सकता कि सभी धर्म एक दूसरे के विरोधी हैं अथवा वे लोगों की सच्ची धार्मिक भावनाओं का विरोध करते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तथा पश्चात्

4. शताब्दियों से विभिन्न धर्मों के मतावलम्बी एक साथ और अधिकतर शांतिपूर्वक रहते चले आए हैं, भले ही उनमें सदा पूर्ण सदभावना न रही हो। इसमें संदेह नहीं कि विभिन्न समुदायों के मध्य पारस्परिक टकराव कोई नयी बात नहीं है किन्तु वे प्राय: दूरवर्ती स्थानों पर घटने वाली छिटपुट घटनाएं ही होती थीं और स्थानीय प्रकृति की होती थीं। समाज ऐसी समस्याओं को सुलझा देता था और लोगों की व्यापक एकता पर उनका विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता था। 'धार्मिक सांस्कृतिक मतभेदों' का अस्तित्व, भले ही इन मतभेदों की जबरदस्त चेतना थी, किन्तु इस पर भी दीर्घकाल तक चलने वाली साम्प्रदायिक शत्रुता की भावना स्वयंमेव उत्पन्न नहीं हो गई थी। उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दुओं तथा मुसलमानों ने 1857 के भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में विस्मयकारी एकता का परिचय दिया था जिसे साम्राज्यवादी अपमानजनक ढंग से सिपाहियों के विद्रोह का नाम देते हैं। स्थिति में उस समय गुणात्मक परिवर्तन हुआ जब राष्ट्रीय आंदोलन के उफान से भयभीत होकर उपनिवेशवादी शासकों ने 'बांटो और राज करो' की नीति पर चलना शुरू कर दिया।

5. प्रख्यात इतिहासकारों के अनुसार साम्प्रदायिकता का प्रादुर्भाव साम्राज्यवादी शासकों की ''बांटो और राज करो'' की नीति लागू होने के समय से हुआ था; जो उचित ही है। यह सर्व विदित है कि इस नीति की दृष्टि से हमारे देश के दो प्रमुख

धार्मिक सम्प्रदायों जिन्होंने बहुत ही एकजुट होकर उपनिवेशवादी शासन के विरुद्ध संघर्ष किया था, को अंग्रेज शासकों ने अपना शासन बनाए रखने के लिये एक दूसरे से भिड़ा दिया था। तद्नन्तर ब्रिटिश शासनकाल में ही दोनों समुदायों के मध्य अनेक रक्तिम संघर्ष हुए। उपनिवेशवादी शासक देश के राजनीतिक जीवन का विभाजन करने में सफल रहे। यद्यपि भारतीय उप-महाद्वीप की जनता ने उनसे स्वतंत्रता प्राप्त कर ली तथापि यह स्वतंत्रता तब मिली जब देश का एक बड़ा साम्प्रदायिक विभाजन हो गया था। इसकी परिणति जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, स्वतंत्रता के साथ-साथ भारत के विभाजन के रूप में हुई।

6. साम्राज्यवादी शासन तो समाप्त हो गया किन्तु साम्प्रदायिकता समाप्त नहीं हुई। घोर प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ संघ परिवार के झण्डे तले एकत्रित हो गईं, उनके हाथ में साम्प्रदायिकता का शस्त्र था और वे शीघ्र ही देश की राजनीति के केंद्र में पहुंच गईं, साम्प्रदायिकता के अपने शस्त्र की धार वे वर्षों से तीखी कर रही थीं; उन्होंने हिन्दुओं के दिलों में दूसरे समुदायों के प्रति घोर शत्रुता की भावना उत्पन्न कर दी (पहले मुसलमानों और अब ईसाईयों के विरुद्ध भी); इसका उद्देश्य बहुसंख्य सम्प्रदाय का समर्थन प्राप्त करना तथा उसे अपने पक्ष में करना था ताकि वे सत्ता की कुर्सी तक पहुंच सकें। अन्ततः वे केंद्र में गठबन्धन सरकार बना कर सत्तारूढ़ होने में सफल हो गए जिसमें आर एस एस के राजनीतिक अंग भाजपा की बर्चस्वकारी स्थिति है।

7. सन् 1925 में यूरोपीय फाशीवाद से प्रभावित होकर तथा भारत को हिन्दू राष्ट्र बनाने के उद्देश्य को लेकर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ अर्थात् आर एस एस की स्थापना की गई। यह संस्था वृहद रूप से फाशीवाद के पदचिन्हों पर चलते हुए, तथाकथित हिन्दुत्व की विचारधारा को लेकर अवतरित हुई थी। इसने अपने भविष्य की भूमिका को अर्द्धगुप्त एवं अर्द्धदर्शी रखते हुए अपने आपको स्वाधीनता के संघर्ष से पूर्णतः पृथक रखा। स्वतन्त्र भारत में खासतौर पर हाल ही के दशकों में यह अपनी विचारधारा तथा कार्यक्रम को लेकर सामने आई। विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल इत्यादि इसके घटक दल हैं जिनके द्वारा यह भारत के लगभग सभी हिस्सों में अपनी इकाईयां फैला चुकी है। आर एस एस एवं इसकी सहायक संस्थाओं ने एक साथ मिलकर संघ परिवार का गठन किया तथा यह साम्प्रदायिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया। दिखावे के लिए यह बहुसंख्यक समुदाय के हितों की रक्षा करने के लिए है परन्तु सत्य यह है कि सत्ता की कुर्सी के लिए यह बहुसंख्यक समुदाय का समर्थन हासिल करना चाहते हैं। इनके पास जन साधारण

की समस्याओं का कोई समाधान नहीं है। ये लोग केवल बहुसंख्यक समुदाय के लोगों में धार्मिक उन्माद (मुस्लिम-विरोधी एवं अब इसाई विरोधी भी) फैला कर उनका समर्थन हासिल करना चाहते हैं। खूनी दंगों के दौरान साम्प्रदायिक घृणा को बढ़ावा मिलता है, अवांछनीय खून बहाना, हजारों बेगुनाहों की मौत, दुकानों का लूटा जाना, घरों का जलाना, महिलाओं से बलात्कार तथा ऐतिहासिक इमारतों को तोड़ना और इसके साथ राजनीतिक षड्यंत्र तथा अनैतिक कार्यों के फलस्वरूप आज ये लोग सत्ता में विराजमान हैं। ये सभी कार्य इनके द्वारा अपने आपको सत्ता में बनाए रखने के लिए किये जा रहे हैं।

8. भारतीय जनता पार्टी की सरकार जब से सत्ता पर काबिज हुई है तब से देश में साम्प्रदायिकता को नये-नये खतरनाक आयाम मिले हैं। प्रशासन भी साम्प्रदायिकता का शिकार हो रहा है। हिन्दु राष्ट्र एवं हिन्दुत्व की विचारधारा का प्रचार करने में प्रशासन प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से भूमिका निभा रहा है। आज मुस्लिम एवं ईसाई समुदायों पर हमले बढ़े हैं, इस प्रकार लोकतांत्रिक मूल्यों का हनन किया जा रहा है। यदि समय रहते हम इसके प्रति सचेत न हुए तो देश की एकता एवं अखंडता पूरी तरह से नष्ट हो जाएगी। इन परिस्थितियों में ट्रेड यूनियनों ने भी अपना दायित्व आशा के अनुरूप नहीं निभाया है। यदि अब भी हम आगे बढ़कर अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करेंगे तो बहुत देर हो जाएगी।

9. आर एस एस राजनैतिक सत्ता की प्राप्ति के लिए बहुत पहले से तैयारियां कर रहा था, वह पूरे भारत में अपने संगठन का प्रसार कर रहा था। यद्यपि इसने विभिन्न स्थानों पर कहीं छोटे तथा कहीं कहीं बड़े स्तर पर दंगे करवाने में सफलता हासिल की परन्तु इसे कहीं भी संवैधानिक रूप से सफलता नहीं मिली तथा कांग्रेस ने देश के राजनीतिक परिदृश्य में बहुत सीमा तक अपना बर्चस्व बनाए रखा था। कांग्रेस के पूर्ण दिवालियापन के कारण ही उसकी प्रतिद्वंद्वी ताकतों को उभरने का मौका मिला बल्कि कांग्रेस ने खुद अपने खिसकते हुए जनाधार को बचाने के लिए, साम्प्रदायिकता के खिलाफ लड़ने की बजाय मौकापरस्ती की नीति अपनाई। जिसके कारण हिन्दु एवं मुस्लिम दोनों की ही भावनाएं उसके विरुद्ध हो गई। मौकापरस्ती की इस नीति से समझौता करने वाली कांग्रेस बच न सकी लेकिन इसके कारण मूलत: साम्प्रदायिक ताकतों का उत्थान द्रुत गति से हुआ। उस समय गैर वामपंथी एवं गैर कांग्रेसी राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दलों ने भाजपा की मिली-जुली सरकार में शामिल होने से कोई परहेज नहीं किया। इसलिए वे राजनैतिक दल भी सांम्प्रदायिक ताकतों को मजबूत बनाने के लिये जिम्मेदार हैं।

10. नि:संदेह राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के नेतृत्व वाली शक्तियों का आज के राजनीतिक परिदृश्य पर बर्चस्व स्थापित हो चुका है। राजसत्ता हाथ में आ जाने के फलस्वरूप वे उन्मत होकर अपनी साम्प्रदायिक कार्यसूची को लागू करने की दिशा में आगे बढ़ रही हैं। वे वर्तमान में साम्प्रदायिकता की मुख्य धारा का प्रतिनिधित्व करती हैं। किन्तु साम्प्रदायिक शक्तियों ने स्वयं को केवल बहुसंख्य सम्प्रदाय तक ही सीमित नहीं रखा है। मुसलिम साम्प्रदायिक शक्तियां तथा कट्टरपंथी तत्व भी भारत में सक्रिय हैं। जहां हिन्दु साम्प्रदायिक शक्तियों का कार्यक्रम मुसलमान विरोधी है वहीं मुसलमान साम्प्रदायिक हिन्दुवाद विरोधी प्रचार पर ही अधिक बल देते हैं और वस्तुत: दोनों का उद्देश्य एक दूसरे की सहायता करना ही है। हिन्दु साम्प्रदायिक गतिविधि का उपयोग मुसलमान साम्प्रदायिक हिन्दु विरोधी भावनाओं को भड़काने के लिये करते हैं और मुसलमान साम्प्रदायिक गतिविधि का उपयोग हिन्दु साम्प्रदायिकों की ओर से हिन्दुओं में मुसलमान विरोधी भावनाओं को जगाने अथवा उन्हें तीव्रतर करने के लिये किया जाता है। मुसलमान साम्प्रदायिक अपने सहोदर हिन्दु साम्प्रदायिकों की भांति न केवल तनाव की स्थिति उत्पन्न करते हैं अपितु हिंसा भी भड़काते हैं और वे मुसलमान भाईचारे को देश के जनवादी आंदोलन से भी दूर रखने का प्रयास करते हैं। जनवादी विचारों के लोगों तथा श्रमिक संगठनों को इन दोनों रुझानों के विरुद्ध संघर्ष करना होगा। किन्तु हमें यह भी नहीं भूलना होगा कि क्योंकि तथाकथित हिन्दुत्व की बहुसंख्य कट्टरपंथी शक्तियों के पास अपनी बात कहने के अवसर अधिक है, क्योंकि उनके पास लोगों की बड़ी संख्या को गोलबन्द करने की सम्भावनाएं अधिक है, क्योंकि उनके द्वारा सत्ता पर अपना नियंत्रण स्थापित करने की सम्भावना (वर्तमान में वास्तविकता) अधिक है इसलिए वे दूसरों से कहीं अधिक गड़बड़ तथा शरारतपूर्ण कार्रवाईयां करने की क्षमता भी रखते हैं। 'बहुसंख्य सम्प्रदाय की साम्प्रदायिकता को राष्ट्रवादी रुझान के रूप में भी लिया जा सकता है—' यह टिप्पणी वर्ष 1961 में तत्कालीन प्रधानमंत्री ने की थी जो अब सत्य सिद्ध हो रही है। हिन्दु साम्प्रदायिक आज अपने विचारों की दुकानदारी राष्ट्रवाद के नाम पर कर रहे हैं।

कुछ प्रबल कारक

11. आज यह बात सभी लोग जानते हैं कि सामन्तवादी ताकतें इस राष्ट्र की एकता को तोड़ना चाहती है व अन्ततः इसके अलग-अलग हिस्से करना चाहती है। वे प्रत्यक्ष रूप से पृथकतावादी ताकतों व आन्दोलनों का सभी प्रकार से मदद कर रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मुस्लिम कट्टरपंथियों की भूमिका भी इस साम्प्रदायिक परिस्थिति में

तनाव पैदा करने वाली रही है। ये इन सभी गतिविधियों के कारण बहुसंख्यक समुदाय को उदाहरण समेत अपना घिनौना प्रचार करने में मदद मिलती है।

12. पूंजीवादी देशों में राष्ट्रीय संस्कृति के अपमार्जन के सम्बन्ध में जो रुझान दिखाई दे रहे हैं उनमें, पूरे विश्व और खासतौर पर भारत में धार्मिक पुनर्जागरण हो रहा है। प्रति दिन नई अन्धकारमय संस्कृतियां प्रकट हो रही है और ये सभी कट्टरवादी एवं साम्प्रदायवादी ताकतों के आधार को मजबूत करने में सहायक सिद्ध हो रही है। और किसी हद तक ये सभी पृथकतावादी ताकतों तथा उन संस्थाओं के भौतिक विकास एवं उत्साहवर्धन में सहायक होती है जो विभिन्न सामन्तवादी संस्थाओं एवं सरकारों द्वारा चलाई जाती है।

13. हमारे देश की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है जहां आज भी सामन्तवादी सम्बन्धों के अंश जीवित हैं, जहां पिछड़े हुए विचार हैं तथा जहां पिछड़ी हुई आर्थिक सामाजिक व्यवस्था है। शहरी क्षेत्रों में रहने वालों की भी बड़ी संख्या ग्रामीण समाज से जुड़ी हुई है तथा वे भी ग्रामीणों की भांति पिछड़े हुए विचारों के शिकार हैं। इसलिए वे साम्प्रदायिकतावाद से प्रभावित रहते हैं।

14. उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकता के विरुद्ध लड़ने के लिए भयानक शक्तियों के खिलाफ हमे मोर्चा खोलना होगा। इसके लिए अत्यंत गंभीरता तथा दृढ़ निश्चय की आवश्यकता है।

साम्प्रदायिकता के विरुद्ध सी आइ टी यू की कार्रवाईयां

15. सी आइ टी यू के संस्थापक नेता जो मजदूर संघर्षों के लंबे इतिहास से उभर कर आए थे, साम्प्रदायिकता तथा उसके खतरों से भली-भांति परिचित थे। सी आइ टी यू के स्थापना अधिवेशन में नीतिगत प्रस्ताव साम्प्रदायिकता तथा अलगाववादी शक्तियों के विरुद्ध प्रस्ताव पारित किया गया था। इस प्रस्ताव के माध्यम से इस देश की प्रजातांत्रिक जनता को इन शक्तियों द्वारा राष्ट्र की एकता व अखंडता को उत्पन्न हो रहे खतरों से अवगत कराया गया था। दंगे-फसादों से मजदूर तथा कर्मचारी वर्ग के संघर्षों को गंभीर खतरा उत्पन्न होता है—इस बात को भी प्रस्ताव द्वारा उजागर किया गया है। इस प्रस्ताव द्वारा सभी मजदूर संगठनों, जनवादी शक्तियों तथा जनसंगठनों से आह्वान किया गया है कि सब एक होकर इन शक्तियों जैसे जन संघ (अब भाजपा), राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, शिव सेना, लचित सेना (असाम) तथा इसी प्रकार के अन्य संगठनों का मुकाबला करें और इन शक्तियों को परास्त करें। इस

अधिवेशन में यह भी प्रण लिया गया कि इस पवित्र संघर्ष के लिए सभी जनवादी शक्तियों को एक सूत्र में पिरोने के लिए अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग करेंगे।

16. साम्प्रदायिक गतिविधियां लगातार चलते रहने के कारण हमारे लगभग सभी अधिवेशनों तथा कार्यकारिणी की बैठकों के माध्यम से कर्मचारी वर्ग तथा मजदूर संगठनों (विशेषकर सी आइ टी यू की सभी इकाईयों)को सांप्रदायिक तथा अलगाववादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करते रहने का आह्वान किया गया। कामरेड बी० टी० रणदिवे ने श्रीमती इंदिरा गांधी की निर्मम हत्या के पश्तात् सिखों के विरुद्ध दंगों में सकारात्मक भूमिका न अदा करने पर दिल्ली के मजदूर संगठनों की बहुत भर्त्सना की थी। दुर्भाग्यवश सी आइ टी यू की ईकाईयों ने भी इस प्रमुख कार्य को करने के लिए वह भूमिका नहीं निभाई जो निभानी चाहिए थी।

17. अपनी इसी कमी को गंभीरता से लेते हुए 1994 में पटना में संपन्न हुए सी आइ टी यू के आठवें महाधिवेशन ने जो कि बाबरी मस्जिद टूटने के लगभग एक वर्ष पश्चात् हुआ था, एक आयोग में इस गंभीर चुनौती का मुकाबला करने के तरीकों पर चर्चा की। आठवें अधिवेशन से पारित हुए आयोग के इस परिपत्र ने साम्प्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष में मजदूर तथा कर्मचारी संगठनों के लिए अहम् भूमिका अदा करने के मामले में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

18. स्वयं की आलोचना करते हुए मानना होगा कि हमारे देश के कर्मचारी वर्ग, मजदूर-संगठनों तथा यहां तक कि सी आइ टी यू ने भी साम्प्रदायिक तथा अलगाववादी शक्तियों के विरुद्ध सार्थक भूमिका अदा नहीं की जबकि इन शक्तियों की गतिविधियां लगातार चलती रहीं तथा अंततोगत्वा भाजपा सत्ता में आ बैठी। यह दसवां अधिवेशन साम्प्रदायिक शक्तियों के विरुद्ध संघर्षों की रणनीति तय करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। इसका महत्व इस लिये भी बढ़ जाता है क्योंकि भाजपा के सत्ता में आ जाने के फलस्वरूप साम्प्रदायिक गतिविधि एक नये चरण में प्रविष्ट हो गई है।

19. पूरे एक दशक तक साम्राज्यवादियों द्वारा प्रायोजित आर्थिक नीतियों के विरुद्ध संघर्षरत रहे हमारे श्रमिक आंदोलन की इस विफलता का एक प्रमुख कारण यह है कि उसे अभी तक आर्थिक नीतियों के विरुद्ध संघर्ष तथा साम्प्रदायिकता विरोधी संघर्ष के मध्य व्याप्त जटिल एवं विकट सम्बन्धों का पर्याप्त ज्ञान ही नहीं है। भाजपा के नेतृत्व वाला गठबन्धन साम्राज्यवादियों द्वारा प्रायोजित आर्थिक नीतियों को लागू करने पर तुला हुआ है। वे श्रमिक अधिकारों पर अब तक का

सबसे घृणित हमला कर रहे हैं। उनकी साम्प्रदायिक पैठ एक प्रभावी हथियार बन चुकी है जिसकी सहायता से वे लोगों का ध्यान आर्थिक नीतियों की ओर से हटा देते हैं। भाजपा के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार न केवल प्रतिगामी आर्थिक नीति अपितु प्रतिगामी साम्प्रदायिक विचारधारा के लिये अत्यंत प्रतिबद्ध है। वास्तव में ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक श्रमिक वर्ग तथा अन्य जनवादी शक्तियां साथ ही साथ साम्प्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष नहीं करतीं तब तक उनके लिये प्रभावी ढंग से आर्थिक नीतियों के विरुद्ध संघर्ष चलाना असम्भव होगा।

वर्तमान चरण

20. जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, केंद्र में भाजपा के नेतृत्व वाले गठबन्धन की सरकार की स्थापना ने देश में साम्प्रदायिक स्थिति को नये आयाम दे दिये हैं। संघ परिवार अपनी साम्प्रदायिक कार्यसूची को लागू करने के लिये सरकारी तंत्र का सदुपयोग अथवा दुरुपयोग कर रहा है; वह अपनी स्थिति का पूरा लाभ उठा रहा है; वह अपनी सभी सीमाओं का अतिक्रमण कर रहा है। यहां रेखांकित करने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि ये साम्प्रदायिक शक्तियां न केवल सरकार की नीति में अपनी साम्प्रदायिक कार्यसूची के अनेक मुद्दों को जोड़ रही हैं अपितु सरकारी तंत्र के द्वारा उनका कार्यान्वयन भी किया जा रहा है; वे इस अवसर का लाभ उठा कर अपनी कार्यसूची का राष्ट्रीय कार्यसूची के रूप में प्रस्तुतिकरण कर रही हैं। इसके फलस्वरूप वे देश की जनसंख्या के एक बहुत बड़े भाग को गुमराह करने में सक्षम हो गए हैं। वे किस प्रकार अपने तथाकथित हिन्दुत्व के दर्शन को शिक्षा एवं संस्कृति जैसे क्षेत्रों में लाद रहे हैं, यह अब रहस्य नहीं रहा, यह एक सर्वविदित तथ्य है। इसके दूरगामी परिणाम होंगे, यह स्पष्ट ही है।

21. उनकी रणनीति का एक और पक्ष कभी कभार और कुछेक स्थानों पर प्रत्यक्ष कार्रवाई अर्थात् अल्पसंख्यकों पर नृशंस अत्याचार करना है। ये कार्रवाईयां संघ परिवार के घटकों की ओर से सीधे तौर पर संगठित की जाती हैं (उदाहरणार्थ ईसाई अल्पसंख्यकों पर हमला जो प्राय: बलात् धर्म परिवर्तन के झूठे तर्क का सहारा लेकर किया जाता है)। प्रशासन क्योंकि उनके नियंत्रण में होता है इसलिए उसके द्वारा नृशंस अत्याचार करने वाले लोगों को प्रत्येक ढंग से संरक्षण प्रदान किया जाता है और उनके साथ ही सरकार के नेता तथा संघ परिवार के संगठन इस प्रकार के अपराधों को न्यायसंगत करार देते हैं, वे जघन्य अत्याचार करने वाले अत्याचारों को विचारधारक सहायता प्रदान करते हैं।

22. क्योंकि भाजपा को संसद में पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं है इसलिये साम्प्रदायिक शक्तियों तथा स्वयं भाजपा के हाथ कुछ सीमा तक बंधे हुए हैं, उन्हें एन डी ए के दूसरे घटकों के समर्थन पर निर्भर करना पड़ रहा है और यह आवश्यक नहीं है कि वे सभी भाजपा के साम्प्रदायिक रुख का समर्थन करें। उनकी चुनावी बाध्यताएं हैं जिसके कारण वे खुल कर भाजपा की साम्प्रदायिक कार्यसूची का समर्थन नहीं करते और कभी कभार अपने चुनावी हितों को सामने रख कर वे अल्पसंख्यकों को लुभाने के लिये अपने बड़े भाई के विरोध में वे साहसिक मुद्रा अपना लेते हैं (यह अलग बात है कि कुछेक मामलों में उनके सुझावों को चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं)। गठबन्धन के घटकों की ओर से यह रुख अपनाए जाने के कारण भाजपा सीधे रूप से मन्दिर, धारा 370 अथवा वैयक्तिक कानून को लागू करने की बात नहीं करती अपितु इसकी अपेक्षा वह जनसंख्या के एक भाग की साम्प्रदायिक भावनाओं को जगाती है जो पहले ही भड़की होती हैं ताकि आगामी चुनावों में वह अपने लिये संसद में सम्पूर्ण बहुमत को सुनिश्चित बना सके और अपनी कार्यसूची को पूर्णतया लागू कर सकने में सक्षम हो सके। इस संदर्भ में वाजपेयी का वह वक्तव्य भारी महत्व रखता है जब उन्होंने कहा था कि राम मन्दिर का मामला राष्ट्रीय भावनाओं का द्योतक है।

23. उनकी रणनीति के एक और पक्ष पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं, वह पक्ष है—आइ एम एफ, विश्व बैंक तथा डब्ल्यू टी ओ जैसे साम्राज्यवादी अभिकरणों द्वारा प्रायोजित आर्थिक नीति को लागू करने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी जाए, इस काम को तीव्र गति से पूरा किया जाए; हमारे देश के बड़े कारोबारी घरानों ने सामान्यतया इस नीति को स्वीकार कर लिया है। सार्वजनिक क्षेत्र का पूर्ण विखण्डन, विदेशी हितों के लिये अर्थ व्यवस्था के किवाड़ पूर्णतया खोल देना। इस मामले में एन डी ए के सहयोगी दलों में बड़ी सीमा तक एकता पाई जाती है। इस दिशा में उठाया गया सबसे नया कदम श्रम कानूनों में प्रस्तावित परिवर्तन लाना है जिनके फलस्वरूप मालिकों को पूरा अधिकार मिल जाएगा कि वे जब चाहे अपने यहां श्रमिकों को काम पर रखें और जब चाहे उन्हें काम से निकाल बाहर कर दें। इसके साथ ही साथ जैसा कि सब लोग जानते हैं वे हमारे संविधान को ही बदल देने के लिये तरह तरह के हथकण्डे अपना रहे हैं ताकि उसे एक पक्षीय एवं तानाशाही स्वरूप प्रदान किया जा सके।

24. प्रचार माध्यमों में भाजपा तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के मध्य मतभेदों के समाचार प्राय: प्रकाशित एवं प्रसारित होते रहते हैं। किस समय कौन-सा कदम

उठाया जाए या दावपेच की कौन सी उपयुक्त नीति अपनाई जाए, हो सकता है कि इस प्रश्न पर कभी कभार सीधे रूप में प्रशासन चलाने वाले महानुभावों तथा सरकार के बाहर बैठे भद्र जनों में विचारों की भिन्नता पाई जा रही हो किन्तु भाजपा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के अग्रिम दस्ते अथवा संगठन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है; उसका काम है संघ की विचारधारा को लागू करना। इस मामले में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन के सहयोगियों के मध्य उचित सीमा तक एकता पाई जाती है। वाजपेयी सहित भाजपा के सभी प्रमुख नेता घोर संघी हैं। चुनावों अथवा अन्य मामलों में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सभी संगठनों तथा उसके सांगठनिक नेटवर्क की सहायता प्राप्त किये बिना भाजपा टिक ही नहीं सकता। अन्ततोगत्वा उसका नियंत्रण संघ के हाथ में ही है।

फाशीवाद की ओर बढ़ते कदम

25. वर्तमान में साम्प्रदायिकता और विशेष रूप से बहुसंख्य साम्प्रदायिकता द्वारा उत्पन्न खतरा कितना भयानक है; उसकी भयावहता का ठीक-ठीक अनुमान उस समय तक लगाया नहीं जा सकता जब तक यह बात हम स्पष्ट रूप से समझ नहीं लेते कि संघ-भाजपा साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की फाशीवादी विचारधारा का ही एक उपकरण मात्र है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की विचारधारा तथा उसकी कुछ सांगठनिक प्रणालियों पर युरोपीय और विशेष रूप से नाजी मार्का फाशीवाद का प्रभाव है। वे 'हिन्दुत्व' की विचारधारा के अनुरूप 'हिन्दु राष्ट्र' के लिये काम कर रहे हैं: केवल हिन्दु परम्परा ही भारत की राष्ट्रीय धरोहर है: ऐसा उनका दावा है। जब तक कोई व्यक्ति हिन्दु धरोहर को स्वीकार नहीं करता, हिन्दु देवियों एवं देवताओं के प्रति श्रद्धा का भाव नहीं रखता, राम को राष्ट्रीय संस्कृति का प्रतीक नहीं मानता तब उसे विदेशी माना जाएगा। उस पर मुकद्दमा चलाया जा सकता है, उसकी हत्या की जा सकती है, उसका घर जलाया जा सकता है, उसके साथ यह सब हो सकता है। इस सामाजिक एवं विचारधारक पक्ष के अतिरिक्त वे कठोरता पूर्वक अत्यंत प्रतिगामी आर्थिक नीतियों का अनुसरण कर रहे हैं। राजनीतिक दृष्टि से वे अपनी वर्तमान सीमाओं में रहते हुए भी हमारे राजतंत्र को अधिनायकवादी स्वरूप देने के लिये गम्भीरतापूर्वक प्रयास कर रहे हैं। सावधानी से योजना बना कर और बल का प्रयोग करके बाबरी मसजिद का विध्वंस करना कोरी साम्प्रदायिकता नहीं थी तो और क्या थी। वे प्रत्येक क्षेत्र में जिस प्रकार के हथकण्डे अपना रहे हैं वे हमें प्रारम्भिक फाशीवाद की गतिविधियों का स्मरण कराते हैं।

26. महत्वपूर्ण बात यह है कि भाजपा यह कहते हुए नहीं थक रही है कि राम मंदिर जैसे मसलों पर हमारा कोई एजेंडा नहीं है तथा राष्ट्रीय जनतांत्रिक मोर्चा का एजेंडा ही हमारा एजेंडा है, जबकि भाजपाई प्रधानमंत्री ने यह घोषणा कर रखी है कि ज्यों ही भाजपा संसद में दो-तिहाई बहुमत प्राप्त कर लेगी हम अपने वास्तविक एजेंडे को क्रियान्वित करेगी।

27. 1970 में अपने स्थापना अधिवेशन में ही सी आइ टी यू ने इन घटनाओं को आँक लिया था। सभी जनवादी शक्तियों को सांप्रदायिक शक्तियों के विरुद्ध चेताते हुए अधिवेशन से पारित प्रस्ताव में कहा गया था – प्रजातंत्र जो अल्पसंख्यकों को जरा भी न्याय नहीं दिला सकता, ज्यादा दिनों तक नहीं चल सकता, कभी भी यह तानाशाही शक्तियों का निशाना बनेगा और ये शक्तियां (जनसंघ, शिवसेना आदि) उपरोक्त प्रतिक्रियावादी संगठनों की प्रतीक हैं... धार्मिक तथा राजनैतिक अल्पसंख्यकों को अपने हमलों का लक्ष्य बनाना इन प्रतिक्रियावादी शक्तियों द्वारा प्रजातांत्रिक शासन को समाप्त करके देश पर अपनी प्रतिक्रियावादी तानाशाही थोपने की दिशा में उठाया गया पहला कदम है। हाल ही में ***जन संघ*** द्वारा लगाया गया भारतीयता का नारा अल्पसंख्यकों को उकसाने का खुला निमंत्रण है।

28. ''हिन्दू सांप्रदायिक संगठनों द्वारा चलाया जा रहा प्रचार तथा अल्पसंख्यकों पर हमले अल्पसंख्यकों विशेषकर मुस्लिम संप्रदाय को राष्ट्र की मुख्यधारा से तोड़ने का ही कार्य करेंगे। मुस्लिम सांप्रदायिक संगठन भी इस समस्या को और गंभीर बना रहे हैं। मुस्लिम अल्पसंख्यकों की न्यायोचित मांगों की रक्षा करते ये संगठन मुस्लिम अलगाववाद तथा सांप्रदायिकतावाद की भावना पैदा करते हैं। इसका परिणाम मुस्लिम लोगों को मुख्यधारा तथा प्रजातांत्रिक प्रणाली से काटकर अलगाववाद में अपना समाधान ढूढ़ने के लिए प्रेरित करना है।''

29. ''सांप्रदायिकता राष्ट्र की एकता तथा अखंडता के लिए खतरा है। यह कर्मचारी वर्ग तथा प्रजातांत्रिक संघर्षों में दरार पैदा करता है। कर्मचारी वर्ग का पिछड़ा तबका इन सांप्रदायिक तथा अलगाववादी शक्तियों से आसानी से प्रभावित हो जाता है। मजदूर संगठनों को न केवल मजदूर वर्ग की एकता को बचाये रखना होगा अपितु राष्ट्र की आम जनता तथा राष्ट्र की एकता को भी बचाना होगा।''

30. ''प्रतिक्रियावादी शक्तियों के प्रयासों के बावजूद हड़तालों में हजारों की

एकता बनाये रखने में मजदूर संगठन कामयाब रहे हैं। लेकिन अपनी आर्थिक मांगों पर आधारित यह एकता प्रतिक्रियावादी शक्तियों का मुकाबला करने के लिए काफी नहीं है। कर्मचारी वर्ग की एकता का राष्ट्र की एकता को बचाये रखने का एक विशेष दायित्व है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि नये स्वतंत्र राष्ट्र की रक्षा मात्र कर्मचारी वर्ग की एकता तथा उसकी जागरूकता ने ही की है...। कल कारखानों में काम कर रहे वे संगठित मजदूर जो अच्छी दशाओं में कार्य कर रहे हैं। धार्मिक व सांप्रदायिक भावनाओं से उभरकर एक उदाहरण पेश कर सकते हैं।... कर्मचारी वर्ग की धार्मिक व सांप्रदायिक सभावना से ऊपर उठकर राष्ट्र की एकता की रक्षा करने की पहल करने की जिम्मेदारी है। यदि कर्मचारी वर्ग ही सांप्रदायिक वायरस से पीड़ित होगा, कर्मचारी वर्ग जिन्दा नहीं रह सकता तथा इसके लिए वह स्वयं दोषी होगा। यह याद रखना होगा कि एक लम्बे संघर्ष प्राप्त एकता राख हो जायेगी यदि कर्मचारी वर्ग एक वर्गीय शक्ति की तरह कार्य नहीं करेगी और आम जनता को प्रभावित नहीं करेगी।''

हमारे कार्य तथा उत्तरदायित्व

31. मजदूर संगठनों पर दोहरी जिम्मेदारियाँ हैं : (1) कर्मचारी वर्ग को अपने आपको साम्प्रदायिक जहर से स्वतंत्र रखना है तथा अपनी एकता कायम रखनी है तथा (2) राष्ट्र की एकता को बचाये रखने के लिए सांप्रदायिक तथा अलगाववाद शक्तियों को परास्त करना है।

32. कर्मचारी वर्ग का एक बहुत बड़ा हिस्सा रूढ़ीवादी विचारों से प्रभावित है। इसीलिए सांप्रदायिक शक्तियाँ इन रूढ़ीवादी हिस्से में झूठा धार्मिक सांप्रदायिक चेतना उजागर करने में कामयाब हो जाती है। वर्ग चेतना की लगातार सोच यहाँ तक कि आर्थिक स्तर पर भी मजदूरों की सोच में परिवर्तन लाती है। सही वर्ग चेतना धार्मिक सांप्रदायिकतावाद सोच से टकराव लाती है। लगातार संघर्षों से प्राप्त एकता से वर्ग चेतना जागृत कर राष्ट्र के प्रति अपना जिम्मेदारियों का मजदूर वर्ग को अहसास करना ही मजदूर संगठनों का कार्य है। वर्ग चेतना ही सांप्रदायिक घृणा को रोक सकती है तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियों द्वारा उत्पन्न सांप्रदायिक दंगों में सीधे ही अपना सकारात्मक रोल अदा कर सकती है। कुछ राज्यों में सी आइ टी यू के कार्यकर्ताओं ने कुछ सीमा तक अलगाववादी शक्तियों से टक्कर ली है। लेकिन सामान्यता मजदूर संगठन अपने आप को अपने मांगों तक ही सीमित रखते हैं तथा मजदूरों के राष्ट्र के प्रति उनकी जिम्मेदारियों के प्रति शिक्षा नहीं देते हैं। ये संगठन

मजदूरों को राष्ट्र की एकता बनाये रखने के प्रति शिक्षा नहीं देते हैं। ये संगठन मजदूरों को जाति तथा सांप्रदायिक शक्तियों के गलत कारखानों के प्रति भी शिक्षा नहीं देते हैं...।'' परिणामस्वरूप जिस समय मजदूर वर्ग को विभाजन करने वाली शक्तियों के साथ टक्कर लेते हुए संघर्ष करना चाहिए, वे धार्मिक तथा सांप्रदायिक भावनाओं में बह जाते हैं। सांप्रदायिक शक्तियाँ उस समय मूक बनकर बैठ जाती है और उन पर अतिक्रमण नहीं करती जो उनके वर्ग पर आक्रमण कर रहे होते हैं। कर्मचारी वर्ग तथा मजदूर संगठनों को इस बीमारी से लड़ते हुए अपने आपको सैकुलर वर्ग में खड़ा करना होगा तथा जनमानस तथा अपने स्वयं की एकता की रक्षा करनी होगी।

33. सांप्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष में मजदूर संगठनों का कार्य निम्नलिखित रेखांकित किया गया है:

(क) आम जनता तथा विशेषकर कर्मचारी वर्ग वंशगत सांप्रदायिक नहीं हैं। सांप्रदायिक शक्तियों द्वारा झूठा प्रचार ही झूठी सांप्रदायिक चेतना जागृत करता है। मजदूर संगठनों का प्राथमिक कार्य मजदूर वर्ग में सही जानकारी देकर सांप्रदायिक शक्तियों के शरारती व झूठे प्रचार के विरुद्ध शिक्षा प्रदान करना है। हम अपने लक्ष्य में सफल नहीं हो सकते यदि इस कार्य को केवल एक बार ही करने का मानकर चलेंगे। मजदूर संगठनों व वर्ग चेतना के प्रति शिक्षा तथा राजनैतिक चेतना जागृत करना एक लगातार कार्य है। छोटे समूह की बैठकें वार्तालाप को बढ़ावा देती हैं। सेमिनार तथा बड़ी बैठकें भी करनी चाहिये तथा लिखित पर्चे भी इस शिक्षा के लिए प्रयोग में लाने चाहिये।

(ख) यह बात स्पष्ट है कि हमें कट्टरपंथी एवं पुरातनपंथी हमलों को परास्त करने के लिये अपने कार्यकर्ताओं एवं सामान्य श्रमिकों के भीतर वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना तथा उसका विकास करना होगा।

(ग) आज कल संघ परिवार सांप्रदायिक उन्माद राजनैतिक क्षेत्र में फैला रहा है तथा अल्पसंख्यकों पर हमले भी करा रहा है। इनकी इतिहास तथा समाज की झूठी कहानियों का पर्दाफाश करके मजदूर वर्ग को संघ परिवार के विरुद्ध राजनैतिक तौर पर तैयार करना तथा मजदूर वर्ग को अल्पसंख्यकों के विरुद्ध अतिक्रमण को रोकने में अपनी भूमिका प्रेरित करने का कार्य मजदूर संगठनों को करना होगा।

(घ) कर्मचारी वर्ग निजीकरण उदारीकरण, तथा भूमण्डलीयकरण के विरुद्ध संघर्षरत है। भाजपा सरकार की आर्थिक मसलों में प्रतिक्रियावादी भूमिका तथा इनके साम्प्रदायिक एजेंडों के बीच तालमेल जिसके माध्यम से वे सत्ता में रह सकते हैं तथा अपने आर्थिक एजेंड़े को पूर्ण कर सकते हैं, का भी पर्दाफाश करना है।

(ङ) प्रजातांत्रिक शक्तियों के साथ मिलकर आम जनता की एकता बनाये रखने का संदेश लेकर चलने के लिए भी रास्ते निकालने होंगे। इस देश की शोषित ग्रामीण जनता जो देश की जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा है, इन सांप्रदायिक शक्तियों को परास्त करने में अपनी भूमिका अदा कर सकता है।

(च) मजदूर संगठनों को अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए नेतृत्व प्रदान करना होगा। ''दबी हुई जातियों तथा अल्पसंख्यक समुदाय की आम मजदूरों की समस्याओं के साथ साथ अपनी भी कुछ शिकायतें हैं। कभी-कभी ये शिकायतें उनके निजी जीवन में सामान्य मजदूर मांगों से बढ़कर हो जाती है। यदि मजदूर संगठन उनकी इन शिकायतों के प्रति सजग नहीं होते तो यह वर्ग जनसंगठनों के प्रति उत्साहित नहीं होते। वही कारण है कि इस वर्ग की मजदूर संगठनों में सदस्यता कम है। मजदूर संगठनों को अपनी इस कमजोरी को दूर करना चाहिए तथा इस वर्ग की विशेष मांगों के प्रति भी अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिए।''

(छ) सी आइ टी यू की केंद्रीय तथा राज्य इकाइयों की इस दिशा में महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। पहले कदम के रूप में केंद्रीय तथा राज्य इकाइयों को अपने कार्यकर्ताओं तथा सदस्यों के लिए सामग्री उपलब्ध करायी जाहिये। यह कार्य लगातार होना चाहिए क्योंकि सांप्रदायिक शक्तियां भी नित्य नया मामला सामने ला रही है। राज्य इकाईयों को राज्य स्तर पर उन मामलों पर जिनको सांप्रदायिक शक्तियां नित्य उठा रही है, लिखित सामग्री उपलब्ध करानी चाहिए।

34. इसके अतिरिक्त उच्च कमेटियों अर्थात् केंद्रीय तथा राज्य कमेटियों को संगठनात्मक कदम उठाने चाहिये जिससे साम्प्रदायिक शक्तियों के विरुद्ध आंदोलन मजदूर संगठनों की प्रतिदिन के कार्यकलापों का एक हिस्सा बन जाये।

जातिवाद एवं सामाजिक उत्पीड़नः हमारे कार्य

भारतीय समाज में जातिगत विभाजन का दाय-रूप में आगमन प्राचीन सामन्तवादी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था से हुआ है तथा इसे हिन्दु धर्म के 'वर्णाश्रम धर्म' में समाहित कर लिया गया। समय के साथ-साथ आधुनिकता के समावेश की धीरे-धीरे चल रही प्रक्रिया तथा सामाजिक ढांचे पर पड़ रहे इसके प्रभाव के बावजूद यह विनाशक प्रणाली अपनी मध्ययुगीन अभद्रता में तनिक नरमी के साथ अस्तित्व में बनी रही।

हालांकि, हाल ही में समाप्त हुई शताब्दी में सामाजिक-आर्थिक पटल पर राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन सहित कई मौलिक परिवर्तन हुए हैं, तथापि, समाज में जातिगत क्रम-परम्परा के प्रचलन में पर्याप्त परिवर्तन नहीं लाया जा सका है।

कामरेड बी टी रणदिवे के अनुसार ''ये विगत के पाप हैं—इस पापपूर्ण विरासत को राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष भी नकार नहीं सका, और न ही उसने ऐसा किया। चूंकि संघर्ष के राष्ट्रीय मध्यवर्गीय नेतृत्व की रुचि समस्या की जड़ तक जाने तथा इसे समूल उखाड़ने में नहीं थी, अतः वे इसका निराकरण नहीं कर सके...कृषि संबंधों की सामन्तवादी तथा अर्ध-सामन्तवादी व्यवस्था को समाप्त करने में ही इसका उपचार निहित है, जिसे (राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन का) नेतृत्व समाप्त करने को तैयार नहीं था।'' *('जाति, वर्ग एवं संपत्ति-संबंध' के प्राक्कथन से)*।

वर्ग-हित से जातिवाद को बढ़ावा

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व, अंग्रेज शासक भारतीय समाज की अंतर्निहित फूट को बनाये रखने के लिये भू-स्वामियों तथा जातिप्रथा को संरक्षण प्रदान करते थे। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान, भू-स्वामियों के वर्ग से निकले मध्यवर्ग एवं बुद्धिजीवियों का प्रतिनिधित्व करने वाले कांग्रेस-नेतृत्व ने समाज में क्रम-परंपरा से प्रचलित जाति प्रथा को ''न छेड़ने'' की नीति अपनाना बेहतर समझा। वे वस्तुतः भू-स्वामियों तथा सामन्ती हितों का पक्ष लेते हुए अस्पृश्यता एवं जाति-उत्पीड़न के अन्य रूपों के विरुद्ध यदा-कदा नारे लगा देते थे। विदेशी विचारों, विदेशी संस्कृति तथा विदेशी

शासन के विरुद्ध कांग्रेस-नेतृत्व के वर्ग में पुनर्जागरणपरक विचारों का प्रभाव होने के साथ-साथ उनके वर्ग-हितों ने भी सामन्तवाद और जातिवाद के साथ कांग्रेस नेतृत्व का परवर्ती समझौता कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

कामरेड बी टी आर के एक और उद्धरण के अनुसार, ''यह देखने में आयेगा कि तीन शक्तिशाली वर्ग-हित-साम्राज्यवादी, भू-स्वामी तथा मध्यवर्गीय नेतृत्व भू-स्वामियों तथा पूंजीवादपूर्व भू-संबंधों को संरक्षण प्रदान करते हुए जातिप्रथा के संरक्षक के रूप में सक्रिय थे।'' *(जाति, वर्ग एवं संपति-संबंध)।*

औपनिवेशिक शासन तथा स्वातंत्र्योत्तर काल—दोनों ही जाति-प्रथा के विरुद्ध हुए कई आन्दोलनों के साक्षी रहे हैं। किन्तु, उनके आक्रमण केवल जाति प्रथा तथा लोगों पर पड़ने वाले इसके प्रभाव तक ही मुख्यतया सीमित रहे, समाज में इस प्रकार की विभेदक फूट को बढ़ावा देने वाले सामन्ती कृषीय संबंधों की ओर उनका ध्यान नहीं गया।

स्वतंत्र भारत में

स्वतंत्रता के बाद भी यही स्थिति बनी रही। निस्सन्देह, संविधान ने जाति पर ध्यान दिये बगैर, 'कानून के समक्ष समानता' की उद्घोषणा की, अस्पृश्यता को दंडनीय अपराध माना गया, अ. जा./अ.ज.जा. के लिये सेवाओं तथा शिक्षण-संस्थाओं में स्थान आरक्षित किये जाने की व्यवस्था की गई, तथापि, स्वतंत्रता के पाँच दशक बीत जाने पर भी समाज का अधिसंख्य उत्पीड़ित वर्ग घोर अभाव की स्थिति का सामना करने को बाध्य है।

कारण स्पष्ट है। स्वतंत्र भारत में शासक वर्ग ने सामन्ती कृषी संबंधों में बदलाव लाने से मना कर दिया तथा भू-स्वामित्व वाले वर्ग के साथ सत्ता में भागीदारी कर ली। उन्होंने सामन्ती भू-संबंधों को विच्छिन्न करना नहीं चाहा, अपितु उन्हें बरकरार रहने दिया—हाँ, उनके मूल ढाँचे को प्रभावित किये बिना उनमें कभी-कभी तनिक सुधार अवश्य करना चाहा। इस प्रकार, स्वतंत्रता के पाँच दशकों के उपरांत भी ग्रामीण भारत में भू-स्वामित्व तथा संपत्तियों का केंद्रीकरण ग्रामीण परिवारों के अत्यल्प प्रतिशत के ही पास बना हुआ है। मध्यवर्गीय भू-स्वामियों तथा शासकों की सम्मिलित तात्कालिक आवश्यकताओं के प्रति पुराने ढाँचे का सामंजस्य स्थापित करने के लिये ही भूमि सुधार कानून बनाये गये। ऊपर से, इन्हें ठीक ढंग से लागू भी नहीं किया गया। भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ रही है तथा इनकी पगार वस्तुत तेजी से गिर रही है। जाति-विभाजन तथा अन्य

अत्यधिक विषम आर्थिक और सामाजिक समीकरणों में इनकी झलक मिल रही है। इन कारणों से अर्ध सामन्ती सामाजिक संबंधों की निरन्तरता बनी रही तथा जातिप्रथा इसका अभिन्न अंग था।

जाति-आधारित आरक्षण के उपबंधों को भी ठीक से लागू नहीं किया गया, जो कुछ लागू किया गया उससे वास्तविक समस्या के किनारे तक भी नहीं पहुँचा जा सका।

केंद्रीय श्रम मंत्रालय की वर्ष 1999-2000 की वार्षिक रिपोर्ट से स्पष्ट है कि रोजगार कार्यालयों के चालू रजिस्टरों के अनुसार 1988 से 1997 के दौरान अ.जा./अ.ज.जा. बेरोजगारों की संख्या क्रमशः 50.3 प्रतिशत (प्रति वर्ष 5 प्रतिशत से अधिक) तथा 65.6 प्रतिशत (प्रति वर्ष 7 प्रतिशत से अधिक) बढ़ गई थी जो जनसंख्या तथा श्रम-शक्ति की वार्षिक वृद्धि दर से कहीं ज्यादा है। इसी रिपोर्ट से यह भी मालूम होता है कि उक्त अवधि के दौरान अ.ज.जा. श्रमिकों का नौकरियों में पदार्पण 29 प्रतिशत कम हो गया है। सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों तथा विभिन्न सरकारी विभागों की रोजगार-रूपरेखा—केवल जहां माना जाता है कि रोजगार आरक्षण योजना लागू की जाती है—से भी अ.जा./अ.ज.जा. की गिरती हिस्सेदारी की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। यह कहीं भी 25 प्रतिशत के लक्ष्य के आस-पास नहीं है।

अन्य पिछड़े वर्गों संबंधी स्थिति भी घोर निराशापूर्ण है। अन्य पिछड़े वर्गों को आरक्षण की सुविधा प्रदान करने का प्रश्न संविधान बनाते समय टाल दिया गया था। काका कालेलकर समिति की इस विषय से संबंधित रिपोर्ट को कूड़ेदान में डाल दिया गया। मंडल आयोग की रिपोर्ट भी तब तक लागू नहीं की गई जब तक कि श्री वी पी सिंह प्रधान मंत्री नहीं बन गये। इस निर्णय का स्वागत भी निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा आयोजित किये गये हिंसक विरोधों के साथ हुआ था, इसे लागू करना तो दूर की बात है।

स्थायी हल के अभाव में, सामान्यतया रोजगार आरक्षण के उपबंधों को समर्थन प्रदान करते हुए सी आइ टी यू ने निर्देश किया है कि दलितों तथा अन्य पिछड़े वर्गों की समस्या का स्थायी हल केवल आरक्षण से निकलने वाला नहीं है। का. बी टी आर को उद्धृत करते हुए, ''वस्तुतः, इन प्रशासकों से न तो गरीबी और बेरोजगारी की समस्याएं ही हल होने वाली हैं तथा न ही अछूतों और अन्य दलित जातियों की स्थिति में परिवर्तन होने वाला है। इनसे इन समुदायों के लोगों को कुछ राहत अवश्य पहुँचाई जा सकेगी, किन्तु उनकी स्थिति में परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा।''

'जातिभेद से ऊपर उठ कर समता' की बात करने वाला पवित्र घोषणा पत्र तथा अन्य प्रशामक गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले उन्हीं (दलितों) की तरह के दूसरी जातियों के लोगों की तुलना में भी इन पिछड़ी एवं दलित श्रेणियों की गरीबी एवं अभाव की उत्कटता को रोक नहीं पाए हैं।

राष्ट्रीय प्रायोगिक आर्थिक अनुसंधान परिषद (एन सी ए ई आर) द्वारा कराए गये सर्वेक्षण से जान पड़ता है: ''सामाजिक ग्रुपों की आय के स्तर से पता चलता है कि राष्ट्रीय औसत के मुकाबले अ.जा. के लोगों की कुल पारिवारिक एवं प्रति व्यक्ति आय सर्वाधिक कम हैं तथा इसके बाद क्रमश: अ.ज.जा. के लोगों की बारी आती है। अ.जा. तथा अ.ज.जा. की प्रतिव्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत प्रति व्यक्ति आय से क्रमश: 38 प्रतिशत तथा 36 प्रतिशत कम है।'' (भारत मानव विकास रिपोर्ट-ऑक्सफोर्ड) इसी सर्वेक्षण से यह भी ज्ञात होता है कि अ.जा. तथा अ.ज.जा. में गरीबी की स्थिति तथा घनीकरण—दोनों ही काफी ज्यादा हैं। निम्नतम आय प्रवर्ग में अ.ज.जा. तथा अ.जा. परिवारों का अनुपात 70 प्रतिशत है जबकि समस्त हिन्दू परिवारों के संदर्भ में यह औसतन 50 प्रतिशत है)।

आय-निर्धनता के इस भयावह आंकलन के अतिरिक्त, अ.जा./अ.ज.जा. उस जनसंख्या के सबसे बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं जिनके पास भूमि तथा अन्य कोई परिसंपत्ति नहीं है तथा जिनमें 60 प्रतिशत से अधिक निरक्षर हैं। इससे सरकार के गरीबी हटाने तथा दलित जातियों के उत्थान के दावों के खोखलेपन का पर्दाफाश होता है।

सामाजिक पक्षपात

सामाजिक मोर्चे पर भी इन श्रेणियों के लोगों को सबसे भयानक एवं जघन्य प्रकार के अत्याचारों एवं दमन को झेलना पड़ रहा है। बीसवीं शताब्दी के अंत में भी हमारे देश के अनेक भागों में अस्पृश्यता का विकृत रूप देखने को मिलता है। उच्च जातीय ग्रुप कई दशाब्दियों से निम्न जातियों के लोगों पर योजनाबद्ध ढंग से आक्रमण करते रहे हैं। ग्रामीण भारत में निम्न जातियों के लोगों पर सीधे जानलेवा प्रहार करने तथा अन्य अत्याचार करने की घटनायें बढ़ती जा रही हैं। बिहार में भू-स्वामियों की किराये की 'रणबीर सेना' द्वारा दलित खेतिहर-मजदूरों की हत्या आये दिन की जा रही है। देश के कई भागों में अब भी विभिन्न जातियों के लोग न तो इकट्ठे भोजन करते हैं तथा न ही इकट्ठे बैठते हैं। देश के अनेक भागों विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों को सांझे कुंए में से पानी लेने नहीं दिया जाता और चाय की

दुकानों में भी उन्हें चाय देने के लिये अलग प्याले रखे जाते हैं। अनेक स्थानों में मकान मालिक नीची कही जाने वाली जातियों के लोगों को मकान किराए पर नहीं देते।

नीची कही जाने वाली जातियों के लोगों के साथ कामकाजी स्थलों में भी जाति के आधार पर विभिन्न प्रकार का पक्षपात किया जाता है। सफाई सेवक इत्यादि के रूप में काम पर लगे दलित श्रमिकों को किसी भी स्थिति में व्यवसाय बदलने की अनुमति नहीं दी जाती और न ही उनके द्वारा अपनी पात्रता एवं योग्यता सिद्ध किये जाने पर भी उन्हें पदोन्नति दी जाती है; सार्वजनिक क्षेत्र की अनेक इकाईयों में भी न्यूनाधिक यही स्थिति बनी हुई है। अनेक स्थानों में नीची कही जाने वाली जातियों के उन लोगों को जो शिक्षित हैं तथा उच्च पदों पर कार्यरत हैं, के साथ उनके सहयोगियों और यहां तक कि उनके कनिष्ठ सहयोगियों द्वारा भी अपमानजनक व्यवहार किया जाता है। जातिगत पूर्वाग्रहों की जड़ें बहुत गहरी हैं। इसलिये, जातिवाद की समस्या केवल दलितों के आर्थिक अधिकारों के मुद्दों तक ही सीमित नहीं है अपितु उनके आत्मसम्मान तथा समाज में उनकी पहचान के अधिकारों के साथ भी जुड़ी हुई है।

इसके साथ-साथ, जाति विभाजित समाज तथा इसकी सामाजिक-धार्मिक विचारधारा ने दलित जातियों में घर करके तथाकथित उच्चता के झूठ का सहारा लेकर निम्न तबके की जातियों में और अधिक विभाजन को बढ़ावा दिया है। कामरेड बी टी आर के अनुसार, ''हिन्दु समाज में तथाकथित निम्न तबके अथवा जातियां बहुसंख्यक हैं, तो यह बहुसंख्यक वर्ग जातीय असमानता के कलंक को मिटाने तथा कुछ ब्राह्मणों अथवा उच्च जातियों के षड्यंत्र को विफल करने में सफल क्यों नहीं हुआ है? वास्तविकता यह है कि जाति-विभाजन के विष ने अपने आखेटों—जन सामान्य और निम्न तबके जो आगे कई जातियों तथा उप-जातियों में विभाजित हैं—को बुरी तरह से प्रभावित किया है। प्रत्येक अपने प्रति किये गये अन्याय को तो मानता है, पर अपनी उच्च स्थिति से दूसरों के प्रति हो रहे अन्याय का निराकरण करने को तत्पर नहीं है।''

इससे समाज में व्याप्त जातिगत विभाजन की गहराई परिलक्षित होती है जो सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में पूंजीवाद से पहले के संबंधों के अवशेषों से पुष्ट तथा गहरी हुई है। इनसे यह भी पुष्टि होती है कि जातिप्रथा के विरुद्ध ही जाने वाली सतही बातों तथा समानता के झूठे दावों से समाज को इस बुराई से मुक्ति नहीं दिलाई जा सकती जबकि इस प्रकार के सामाजिक अपराधों के मूल में व्याप्त सामन्तवादी

कृषि सम्बंधों को समूल समाप्त न किया जाये। वस्तुतः, इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि विगत में सामन्तवादी उत्पीड़न के विरुद्ध हुए जुझारू संघर्षों से श्रम शील लोगों की एकता, जाति और धर्म की अनदेखी करते हुए, प्रभावी ढंग से मजबूत हुई है। तेलंगाना संघर्ष में उच्च जाति के किसानों तथा दलितों की अद्वितीय एकता लड़ाई के मैदान में देखने को मिली। बाद में, पश्चिमी बंगाल तथा केरल में हुए भू-संघर्ष में भी सभी जातियों के निर्धन किसानों की एकता का दिग्दर्शन हुआ है तथा इन दो राज्यों में सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य पर इसका अनुकूल असर पड़ा है। दूसरी ओर, जाति-संघर्ष तथा जाति-आधारित राजनीति केवल उन्हीं क्षेत्रों में अपना सिर उठा सके हैं जहाँ ग्रामीण श्रमजीवियों एवं निर्धन किसानों का संघर्ष कमजोर है।

बढ़ता प्रतिरोध

भारतीय शासक वर्ग सामन्ती हितों से समझौता करते हुए प्रगति के जिस पूंजीवादी पथ पर अग्रसर है, इससे जातिप्रथा तथा इससे जुड़े सामाजिक उत्पीड़न को बढ़ावा मिला है। किन्तु, भारतीय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में विकास की इस प्रक्रिया के सतही अवमिश्रण से संपूर्ण राष्ट्र में उत्पीड़ित जातियों में चेतना जागृत हुई है। उन्होंने अपने प्रति हो रहे सामाजिक उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठानी शुरू कर दी है। आजकल सामाजिक-राजनैतिक पटल पर यह परिदृश्य प्रमुख रूप से उभर कर आया है। यह एक सकारात्मक परिवर्तन है जो प्रजातांत्रिक विचार-तत्त्व से युक्त है। इसे पुष्ट बनाकर उत्पीड़क मध्यवर्गीय भू-स्वामित्व प्रणाली के विरुद्ध संघर्षशील मुख्य धारा के साथ एकीकृत किये जाने की आवश्यकता है।

दूसरी ओर, सामाजिक उत्पीड़न और अन्याय के विरुद्ध बढ़ रहे इस प्रतिरोध को संबंधित जाति की परिधि तक सीमित रखने तथा उसे जातीय ध्रुवीकरण की ओर मोड़ने के सघन प्रयास चल रहे हैं। उत्पीड़क प्रणाली के विरुद्ध हो रहे सांझे प्रजातांत्रिक आंदोलन से दलित समुदाय को विमुख करना इसका उद्देश्य है। अनेक जाति-नेता तथा अनेक राजनेता जाति-आधारित ध्रुवीकरण का उपयोग संकीर्ण चुनावी-लाभों के लिये वोट-बैंक के रूप में करना चाहते हैं। ये नेतागण यह भ्रम फैला रहे हैं कि इजारेदारों एवं भू-स्वामियों द्वारा नियंत्रित वर्तमान सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के भीतर सत्ता में आ जाने से उनकी समस्याएं हल हो जायेंगी। 1977 के बाद बिहार तथा उत्तर प्रदेश में जो सरकारें सत्ता में आई तथा जिनका नेतृत्व सामाजिक न्याय के नारे लगाने वाले राजनैतिक दल कर रहे थे उन्होंने पश्चिमी बंगाल की वामपंथी सरकार की तर्ज पर भूमि सुधारों को लागू करने के लिये कुछ नहीं किया, तथा न ही उन दलों ने अपने-अपने राज्य में भू-स्वामित्व-प्रथा के

विरुद्ध संघर्ष करने के लिए कोई पहल की।

उत्पीड़ित समुदायों के आम लोगों के बीच बढ़ रहे प्रतिरोध में दोहरापन दृष्टिगोचर हो रहा है। इसमें एक ओर प्रजातंत्रीय विचार-तत्त्व है, तो दूसरी ओर जाति-आधारित ध्रुवीकरण की प्रवृत्ति। यह दोहरापन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जब इन समुदायों के श्रमिकों का एक बड़ा वर्ग, जो अपनी आर्थिक मांगों के लिये लाल झंडे के नीचे जुझारू संघर्षों में भाग लेता है, अपनी निर्वाचकीय अभिरुचि को जाति-संबंधों के आधार पर प्रकट करता है। कई मामलों में, यहां तक कि अंतर-ट्रेड-यूनियन और इंटर-ट्रेड-यूनियन्स चुनावों में भी, इस प्रकार के जातीय संबंध ट्रेड-यूनियन-आस्था पर बुरा प्रभाव डालते हैं।

श्रमिक वर्ग के दायित्व

समाज का सर्वाधिक नूतन वर्ग होने के नाते श्रमिक वर्ग का यह दायित्त्व है, और उसमें इसकी क्षमता भी है, कि वह जातीयता की सामाजिक बुराई के विरुद्ध लड़े तथा इस वर्ग के शत्रुओं के विरुद्ध लड़ाई में सभी श्रम जीवियों को शामिल करे। श्रमिक वर्ग के आन्दोलन का उद्देश्य है कि वर्ग-उत्पीड़न के विरुद्ध सभी श्रमिकों के सांझे संघर्ष के साथ सामाजिक उत्पीड़न के विरुद्ध बढ़ रही जागृति को एकीकृत किया जाये।

जाति प्रथा को बनाये रखने वाले तथा इसे बढ़ावा देने वाले पूर्व पूंजीवादी कृषि संबंधों में सामन्तवाद-विरोधी जुझारू संघर्ष के माध्यम से आमूल परिवर्तन करना वर्तमान सामाजिक प्रणाली को बदलने की कुंजी है। श्रमिक वर्ग के आन्दोलन को कार्य-स्थल पर किये जाने वाले रोजमर्रा के संघर्ष से ऊपर उठ कर मजदूर-किसान की जीवन्त और दृष्टिगत मैत्री को कार्यक्षेत्र में उतारने के लिये ग्रामीण श्रमजीवियों तथा निर्धन किसानों के संघर्ष को प्रगामी बनाने में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिये।

जाति-प्रथा वर्तमान समाज के पूंजीवाद-पूर्व सामन्ती खंडहरों पर निर्मित कैंसरग्रस्त बाह्य ढांचा है। इसमें पूर्व सामन्ती युग की प्रतिक्रियावादी विचारधारा का समावेश है तथा वर्तमान उत्पीड़क वर्ग विभिन्न सुधारीकृत रूपों में इसका प्रयोग कर रहा है। हमारे आन्दोलन का प्रमुख लक्ष्य है इस प्रतिक्रियावादी विचारधारा को उजागर करना तथा इसके विरुद्ध लड़ना। प्रतिक्रियावादी विचारधारा तथा बाह्य ढाँचे को उजागर करने तथा इस पर संगठित प्रहार करने की प्राथमिक आवश्यकता है। इसके बिना न तो हम चल सकते हैं तथा न ही संघर्ष सही दिशा में आगे बढ़ सकता है।

श्रमिक वर्ग के आन्दोलन को भी जातिवादी विचारधारा के साथ-साथ जाति-आधारित वर्गीकरण की निरर्थकता का भंडाफोड़ करते हुए, वर्ग प्लेटफार्म से, पूर्ण गंभीरता के साथ, सभी प्रकार के सामाजिक उत्पीड़न, अन्याय तथा उत्पीड़ित समाज के प्रति किये जा रहे भेदभावपूर्ण व्यवहार के विरुद्ध संघर्ष में अपनी पूरी ताकत लगानी होगी। हमारे समाज में सर्वाधिक उत्पीड़ित वर्गों में अधिकांशत: सामाजिक रूप से उत्पीड़ित जातियां हैं। अत: वर्ग-उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष को सामाजिक उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष के साथ एकीकृत करना ही भावी कार्य है। अत: उत्पीड़ित जन-समुदाय को वर्ग-संघर्ष के प्लेटफार्म पर लाने, उन्हें जाति-आधारित विभिन्न संगठनों से मुक्त कराने के लिये वर्ग प्लेटफार्म को इन उत्पीड़ित लोगों के सच्चे हिमायती के रूप में अपनी छवि बनानी होगी।

विभिन्न समस्याएं और कार्य

जाति-विभाजन के समाज पर, विशेषकर कार्यस्थल पर, पड़ने वाले प्रभावों का यदि निकट से निरीक्षण किया जाये तो समस्याओं तथा कार्यों के संबंध में कुछ और विशेष संकेतक दिखाई देंगे। इनमें से कुछेक को संक्षेप में निम्नानुसार देखा जा सकता है।

- जाति आधारित संगठन बनाने की घातक प्रवृत्ति प्रकट रूप से तथा चोरी-चोरी घर करती चली जा रही है। इनमें से बहुत-सारे संगठन किसी केंद्रीय ट्रेड-यूनियन से जुड़े बिना ही स्वतंत्र रूप से अपना अस्तित्व बनाये रखते हैं तथा गतिशील रहते हैं।

- एक से अधिक ट्रेड यूनियन होने के कारण, देश के कुछ विशेष भागों में एक विशेष जाति अथवा समुदाय के लोग किसी एक विशेष यूनियन में शामिल होते हैं तो दूसरे दूसरी किसी और में। सार्वजनिक क्षेत्र की कुछ इकाइयों में हुए गुप्त मतदान से केंद्रीय ट्रेड यूनियनों से सम्बद्ध विभिन्न ट्रेड-यूनियनों में भी जाति-आधारित ध्रुवीकरण देखने में आया है।

- दलितों तथा अन्य पिछड़ी जातियों में बढ़ते हुए प्रतिरोध तथा जाति-चेतना के प्राधान्य से इन समुदायों के विभिन्न वर्गों के बीच भी संघर्ष एवं विरोध उत्पन्न हो गया है। इससे आम तौर पर श्रमिकों में एकता बनाये रखने तथा कई स्थानों पर संगठनों को इकट्ठे रखने की गम्भीर समस्या पैदा हो गई है।

इस प्रकार के बीसियों उदाहरण कई क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं। कार्य स्थलों पर ट्रेड-यूनियनों के एकीकृत आंदोलन पर, आर्थिक मांगों पर भी इनका नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

हमें इन समस्याओं से कैसे निपटना है ? उपर्युक्त सभी समस्याएं दलित जन समुदाय में बढ़ते सामाजिक उत्पीड़न के संदर्भ में वर्ग-चेतना पर जाति-चेतना के आधिपत्य का संकेत हैं। शोषक सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध वर्ग चेतना के रूप में बढ़ते इस प्रतिरोध को विकसित करने में श्रमिक वर्ग और समग्र लोकतांत्रिक आन्दोलन के विफल रह जाने से ट्रेड-यूनियन आंदोलन में भी विघटन होने लगा है।

किन्तु, उक्त परिदृश्य में हमें क्या करना है ? स्वाभाविक है कि हमें शोषण सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन तेज करते हुए इस समस्या को जड़ से उखाड़ने के लिये अपने प्रयास जारी रखने चाहियें। सामाजिक अन्याय की समस्याओं का निराकरण करने के लिये हमें और ज्यादा कारगर भूमिका निभानी चाहिये तथा कार्यस्थल पर इसकी गूंज भी सुनाई देनी चाहिये।

कभी-कभी हमारे साथी जाति प्रथा की कोरी निन्दा करते हुए सामाजिक शोषण और अन्याय के मसलों के प्रति उदासीनता का रुख अपना लेते हैं। अ.जा./ अ.ज.जा. तथा पिछड़ी जातियों के श्रमिक जब सामाजिक उत्पीड़न से संबंधित वास्तविक मामले भी उठाते हैं तो हमारी ट्रेड-यूनियनें ढीला एवं दखल न डालने वाला रुख अपना लेती हैं। प्रायः यह देखने में आया है कि हम लोगों में पीड़ित तबके के श्रमिकों की सही मांगों को नियमित ट्रेड-यूनियन एजेंडा के रूप में शामिल करने के उत्साह की कमी है। जैसे भर्ती/पदोन्नति के मामलों में आरक्षण योजना को उपयुक्त ढंग से लागू करना, पिछले बैकलाग को पूरा करना, पदोन्नति पाने तथा व्यवसाय को बदलने के उनके अधिकार को मानना, कामकाजी स्थलों तथा समाज में जाति आधारित पक्षपात की समाप्ति इत्यादि। हमारे इस निष्क्रिय रुख से सामाजिक न्याय के योद्धा होने की हमारी छवि नष्ट हो जाती है तथा श्रमिकों के सामाजिक रूप से शोषित वर्गों में अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप वे जाति-आधारित संगठनों की ओर मुड़ जाते हैं तथा उनकी वैधता और साख में अपना योगदान देते हैं।

श्रमिक आंदोलन को आर्थिक मामलों के साथ-साथ सामाजिक न्याय तथा सामाजिक उत्पीड़न के विरुद्ध तथा दलितों की पहचान एवं सम्मानजनक स्थिति के

लिए संघर्ष के मुद्दे को भी अपनी नियमित कार्यसूची में सम्मिलित करना चाहिये। इन प्रश्नों पर प्रचार एवं कार्रवाई केवल रस्मी अथवा औपचारिकता पूरी करने वाली नहीं होनी चाहिए। यद्यपि आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु जैसे कुछ विशेष राज्यों में इस सम्बन्ध में कुछ संगठित प्रयास किये गए हैं तथापि अब भी हमारे भीतर गम्भीरता का अभाव है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां जातिगत विभाजनों का भीषण रूप देखने को मिलता है। हमें अपनी इस दुर्बलता को अवश्यमेव दूर करना होगा।

हमारे देश में ग्रामीण क्षेत्रों के दरिद्रजनों तथा श्रमिक आंदोलन का असमान विकास हुआ है। देश भर में जातिवादी शक्तियों का हमला भी एक समान नहीं है। जिन क्षेत्रों में भूमि सुधार न्यायोचित ढंग से सफलतापूर्वक लागू किये गए हैं वहां जातिवादी नारे दलित जनता को अधिक प्रभावित नहीं करते। हमें मूल सत्य पर बल देने के लिये इस तथ्य को रेखांकित करना होगा कि दलित जनता के पिछड़ेपन की समस्या का समाधान करने अथवा उसे दूर करने के लिये भूमि पर ग्रामीण भू-स्वामियों के नियंत्रण को समाप्त करना तथा कृषि करने वाले भूमिहीन किसानों में भूमि का वितरण करना अत्यावश्यक है। किन्तु इसके साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना होगा कि सामंत विरोधी संघर्ष को ठीक दिशा में ले जाने के लिये दलित जनता की व्यापक लामबंदी हमारी पहली आवश्यकता है। वर्तमान जातिग्रस्त समाज में सामाजिक उत्पीड़न के विरुद्ध तथा सामाजिक न्याय के लिये संघर्ष दलित जनता को संघर्षों की मुख्यधारा में खींच लाने का एक महत्वपूर्ण अंग अथवा संघटक होना चाहिये। विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां श्रमिक आंदोलन सामान्यतया दुर्बल है, सामाजिक उत्पीड़न के तात्कालिक मुद्दों की ओर दलित जनता आकर्षित होगी।

इसी प्रकार, हमें वर्ग-एकता के मंत्र का आलाप करते नहीं रहना है तथा न ही जाति-आधारित आरक्षण की प्रत्येक मांग को अथवा सामाजिक उत्पीड़न के मामलों के विरुद्ध संघर्ष को विभेदक कार्रवाई मानते हुए अप्रसन्न रहना है। जैसे हम ट्रेड-यूनियन आन्दोलन में स्वयं को कोई परिवर्तन नहीं के सुधारक दृष्टिकोण को उत्पन्न करने वाले मितव्ययितावाद तक सीमित नहीं रखते हैं, इसी प्रकार दलित समुदाय भी सामाजिक संबंधों में 'यथास्थिति' बनाये रखने से संतुष्ट होने वाला नहीं है। चूंकि इन वर्गों को सदियों तक वंचित रखा गया है, अतः पदों और अवसरों के अधिकार के मामले में उन्हें प्रतिपूर्ति न्याय का साधिकार हक है। एक वर्ग-सजग ट्रेड-यूनियन, दलित समुदाय की सामाजिक न्याय की खोज तथा सामाजिक उत्पीड़न समाप्त करने में उनका पक्ष लेगी, निष्क्रिय और शान्त नहीं रहेगी।

हमें इस संदर्भ में गंभीरता से विचार करना चाहिये कि समाज में व्याप्त 'उच्च

जाति पूर्वाग्रह' ने कार्यस्थलों तथा अन्य क्षेत्रों में हमारे संगठनों को प्रभावित किया है। हालांकि, सी आइ टी यू ने इस प्रकार के पूर्वाग्रह की पूरी तरह भर्त्सना की है। वर्तमान समाज में, जहां पिछड़ापन तथा विभिन्न घातक प्रवृत्तियां विद्यमान हो, इस संभावना से पूर्णतया इनकार नहीं किया जा सकता और हमें इसके विरुद्ध सजग एवं चेतन रहना चाहिये।

एक वर्गीय संगठन के लिये दलित जनता जिसकी समाज में विशाल बहुसंख्या हो, में अपनी प्रतिष्ठा साख बनाना और उसे मजबूत बनाना आवश्यक है ताकि उसे जातिवादी प्रभावों से बाहर निकाल कर शोषक वर्ग के विरुद्ध चल रहे संघर्ष के साथ जोड़ा जा सके। अत: सी आइ टी यू के लिये अनिवार्य रूप से आवश्यक कार्य यह है कि वह उनकी इस स्थिति को निरपेक्ष भाव से मूक दर्शक बन कर देखता ही नहीं रहे अपितु स्वयं को समाज की सम्पूर्ण दलित शक्तियों के सबसे बड़े हित साधक के रूप में स्थापित करे तथा हस्तक्षेप करे। सामाजिक उत्पीड़न के विरुद्ध तथा सामाजिक न्याय के लिये और दबी कुचली दमित श्रेणी की उचित मांगों को पूरा कराने हेतु संघर्ष की संगठित कार्रवाई श्रमिक संघों की नियमित कार्यसूची में सम्मिलित की जानी चाहिये। हमें जाति आधारित संगठनों में सामाजिक नयाय की पहलकदमी छीन लेनी चाहिये। इसके साथ ही साथ अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जन जातियों तथा पिछड़ी एवं दलित जातियों के श्रमिकों में से अधिक से अधिक कार्यकर्ता बनाने के लिये चेयन एवं सुनियोजित ढंग से प्रयास करने चाहियें और हमारे श्रमिक संघों में उन्हें नेतृत्वकारी पदों में लाया जाना चाहिये।

हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि उदारीकृत आर्थिक परिदृश्य श्रमजीवी जनता पर बढ़ते आक्रमणों की पृष्ठभूमि में श्रमिक वर्ग तथा श्रम-जीवी जनता की अखंड एकता का होना समय की अनिवार्य मांग है। दूसरी ओर, आर्थिक उदारीकरण के आक्रमण के साथ-साथ विचारधारा के हथियार का उपयोग भी किया जाता है तथा सत्ताधारी वर्ग द्वारा प्रत्येक ढंग से लोगों को विभाजित करने तथा उनमें फूट डालने के लिए सोच समझ कर अभियान चलाया जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के निजीकरण की विवेकहीन मुहिम से तथा विभिन्न सरकारी विभागों में श्रम-शक्ति को निरंकुशता से कम किये जाने से स्थिति नि:सन्देह और भयावह होगी। इससे समाज और अर्थव्यवस्था पर अनेक प्रतिकूल प्रभाव पड़ेंगे। इससे पद-आरक्षण के वर्तमान प्रावधान वस्तुत: अर्थहीन हो जायेंगे। उदारीकरण की गति को तेज करने के लिये भारत पर दबाव डालते हुए साम्राज्यवादी अमेरिकी प्रशासन का केंद्र में बी जे पी सरकार को तथा सामाजिक मोर्चे पर इसकी विभाजक नीतियों को

पूर्ण सहयोग प्रदान करना अस्वाभाविक नहीं है।

उदारीकरण शुरू होने के बाद की अवधि में, अवसरों के कम होने तथा बेरोजगारी एवं निर्धनता के बढ़ जाने से विभाजक प्रवृत्तियों को आपसी फूट और भेद-भाव को जाति-आधारित मार्ग तथा अन्य विभिन्न मार्गों पर अग्रसर करने के लिये उपजाऊ भूमि मिल जायेगी। इस प्रक्रिया में, पहले से ही सिकुड़ रहे केक में ज्यादा हिस्सा लेने की होड़ में किसी भी ग्रुप के हाथ कुछ भी नहीं लगेगा तथा वह नष्ट हो जायेगा। एकता तथा एकीकृत संघर्ष की ताकतें ही इसका प्रभावी ढंग से मुकाबला कर सकती हैं। समाज के शोषित वर्गों के हित-लाभ के लिये कार्यस्थल पर तथा इसके बाहर डट कर संगठित संघर्ष करना और भी अनिवार्य हो गया है। इसके साथ-साथ, हमें विभेदक जातीय प्लेटफार्मों के असली चेहरों को उजागर करना होगा, जिनमें से कुछ तो सामाजिक न्याय के नारों का छलावरण भी करते हैं, तथा उनकी विनाशक नीतियों के विरुद्ध समग्र श्रम-शक्ति को संगठित करना होगा।

अनौपचारिक क्षेत्र तथा श्रमिक आंदोलन के समक्ष चुनौतियां

सी आइ टी यू में हम लोगों ने यह निश्चय किया कि असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को संगठित करने के लिए आवश्यक ध्यान दिया जाय तथा 1991 के कलकत्ता अधिवेशन में असंगठित मजदूरों की अखिल भारतीय समन्वय समिति का गठन किया था। 1992 में पानीहाटी में असंगठित मजदूरों का अखिल भारतीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ। सभी राज्यों में असंगठित मजदूरों के लिए राज्य स्तरीय समन्वय समिति गठित करने का निर्णय लिया गया लेकिन बहुत से राज्यों में ऐसे कमेटियों का गठन नहीं हुआ। असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की माँगों पर 1993 में अखिल भारतीय स्तर पर हड़ताल की गई। चेन्नई के जनरल काउंसिल मीटिंग में इस पर पुनर्विचार किया गया।

लेकिन इन प्रयासों का परिणाम कोई महत्वपूर्ण सुधार के रूप में नहीं हुआ। हालाँकि वर्तमान में सी आइ टी यू की 50 प्रतिशत सदस्य संख्या असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की है। असंगठित क्षेत्र के बड़े आकार को तुलना में हम लोग इस क्षेत्र में छोटी ताकत हैं। उदाहरण के लिए देशभर में 50 लाख बीड़ी मजदूरों के बीच 3 लाख मजदूर हमारे सदस्य हैं। जहाँ हम ताकतवर कहे जाते हैं वहाँ भी हमारी सदस्य संख्या वहाँ के बीड़ी मजदूरों में 15 प्रतिशत से कम है। इसी तरह आँगनवाड़ी में 12 लाख कर्मचारियों में एक लाख हमारे सदस्य है। उन राज्यों में जहाँ कोई और संगठन नहीं है हमारी सदस्य संख्या 40-45 प्रतिशत से ज्यादा नहीं है। भवन निर्माण, ईंट भट्ठे, कालीन, मिट्टी एवं चीनी के बर्तन बनाने वाले, चूड़ी, पटाखे, माचिस व अन्य उद्योगों में हमारी स्थिति बहुत खराब है। ऐसा लगता है कि निचले स्तर पर संगठन का नेतृत्व प्रारम्भिक सफलता से संतुष्ट होकर शिथिल पड़ जाते हैं। अपनी सदस्य संख्या को बढ़ाने के लिए कोई प्रयास नहीं किये जाते।

असंगठित क्षेत्र के 6 करोड़ मजदूरों में से सी आइ टी यू की सदस्य संख्या 20 लाख से भी कम है। शेष का छोटा हिस्सा ही दूसरे ट्रेड यूनियन संगठन या लोकल संगठन से जुड़ा है जबकि बहुत बड़ा भाग ट्रेड यूनियन आंदोलन से बिल्कुल अलग है।

भूमंडलीयकरण के अंतर्गत अनौपचारिक क्षेत्र

साम्राज्यवादी भूमंडलीकरण के अन्तर्गत असंगठित क्षेत्र का बहुआयामी विकास हुआ है। असंगठित क्षेत्र के सभी मजदूर, संगठित क्षेत्र के अनियमित व ठेका मजदूर, स्वरोजगारी, सेवा क्षेत्र के मजदूरों को अनौपचारिक क्षेत्र का कार्य बल कहा जाता है। विश्व के प्राय: सभी देशों में इस क्षेत्र का फैलाव तेजी से हो रहा है। खास कर उन देशों में जो विश्व बैंक के निर्देशों का अनुपालन करते हैं।

टेक्नोलाजी ने इस बात को संभव बनाया है कि एक काम को बहुत से छोटे-छोटे भागों में बाँटा जा सके जिसे विभिन्न जगहों पर पूरा किया जाता है तथा किसी और जगह पर एसेम्बल किया जाता है। निपुण कार्य की आवश्यकता को लगातार कम किया जा रहा है। प्रत्येक कार्य के लिए सामान्य आपरेशन की आवश्यकता होती है जिसे अनियमित मजदूरों से कराया जा सकता है, जिससे नियोजक नियमित मजदूरों के बजाय सस्ते व अनिपुण मजदूरों खासकर महिलाओं व बच्चों को लेते हैं।

असंगठित क्षेत्र में रोजगार का प्रतिशत हमारे देश में करीब 92 प्रतिशत है। संगठित क्षेत्र में रोजगार का प्रतिशत 1991 के जनगणना के अनुसार 1981 के 9 प्रतिशत से घटकर 8 प्रतिशत हो गया है। नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के लिए वर्किंग ग्रुप ऑफ लेबर पालिसी के रिपोर्ट के अनुसार देश के सम्पूर्ण कार्य बल का 93 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में है। शहरी व ग्रामीण दोनों मिलाकर गैर कृषि क्षेत्र में करीब 79 प्रतिशत रोजगार असंगठित क्षेत्र में है।

अनौपचारिक/अनियमित क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में करीब 63 प्रतिशत का हिस्सा है। गैर कृषि क्षेत्र का 47 प्रतिशत व शहरी अर्थव्यवस्था का प्रतिशत अनौपचारिक क्षेत्र के कार्यों से आता है और शहरी अर्थव्यवस्था में जुड़ने वाले कुल मूल्य का 35 प्रतिशत भाग अनौपचारिक क्षेत्र की गतिविधियों में आता है जो कृषि तथा इसके साथ-साथ निर्माण तथा व्यापार में कहीं अधिक होता है।

उदारीकरण का प्रभाव

सार्वजनिक क्षेत्र के विनाश के फलस्वरूप नियमित रोजगार में बहुत अधिक कटौती की जा रही है। पिछले कुछ वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र में करीब 3 लाख रोजगार को कम किया गया है। संबंधित कार्य को ठेका मजदूर के द्वारा करवाया जाता है। स्टील, कोल, रेलवे, पोस्टल व टेलीफोन जैसे कई सार्वजनिक क्षेत्रों में बहुत से स्थायी प्रकृति वाले कार्यों को आकस्मिक, अनियमित व दैनिक मजदूरों द्वारा किया जा रहा है। स्टील अथारिटी में करीब एक तिहाई मजदूर कन्ट्रेक्ट मजदूर हैं। कोयला उद्योग में भी यही स्थिति है।

संगठित निजी क्षेत्र में स्थिति बहुत ही खराब है। मारूति में कई पार्टस विभिन्न सहायक यूनिट में बनाये जाते हैं, जो आधुनिक तो हैं लेकिन बहुत कम मजदूरों द्वारा चलता है। तथा सभी पार्टस को मुख्य फैक्टरी में एसेम्बल किया जाता है। रिलायन्स टेक्सटाइल का कोई उत्पादन यूनिट नहीं है। स्पिनिंग मिल से यह सूतों का गठ्ठर खरीदता है जिसकी गुणवत्ता परख कर बुनने के लिए पावर लूम को दिया जाता है। केवल गुणवत्ता नियंत्रण व प्रबंन्ध ही रिलायन्स द्वारा किया जाता है। बुनकर को प्रति मीटर बने कपड़े के लिए थोड़ी राशि दी जाती है। बाटा जूतों का ऊपरी भाग घर-आधारित मजदूरों द्वारा बनाया जाता है जिसे अन्य स्थान पर फैक्टरी में सोल से जोड़ा जाता है।

उदारीकरण की नीति ने असंगठित उद्योगों के एक स्थान से दूसरे स्थान के प्रवास की स्थिति को बढ़ावा दिया है। अनौपचारिक क्षेत्र में अंतर-राज्यीय व सीमा पार के अप्रवासी मजदूरों का बहुत बड़ा भाग शामिल है। इन मुद्दों पर भी विचार किया जाना चाहिए।

इस प्रकार पिछले दशक से संगठित क्षेत्र में अनौपचारिक क्षेत्र तेजी से बढ़ रहा है। विश्व बैंक द्वारा प्रचारित दक्ष प्रबंधन का नुस्खा, जिसे उद्योगों के प्रबंधक द्वारा अमल में लाया गया है, के अनुसार नियमित मजदूरों की संख्या बहुत कम रखी जाती है तथा अनियमित कर्मचारियों से ज्यादा से ज्यादा काम लिया जाता है जिसके प्रति प्रबंधक की कोई जिम्मेदारी नहीं होती। इस नीति के तहत बहुत से बड़े उद्योग जैसे गार्मेन्ट्स जूता व इलैक्ट्रानिक्स आदि ने घर-आधारित मजदूरों को ज्यादा से ज्यादा काम दिया। फलस्वरूप पिछले दशक में घर-आधारित मजदूरों की संख्या बहुत अधिक बढ़ी है।

गार्मेंट्स, लेस, बीड़ी हौजरी तथा कालीन आदि उद्योगों के अनेक अध्ययन

यह दर्शाते है कि यह क्षेत्र असंगठित है लेकिन पूंजी असंगठित नहीं है। उत्पादन हालांकि छितराया हुआ है लेकिन बहुत ही संगठित है। दिन प्रतिदिन श्रम का विश्वव्यापी विभाजन होता चला जा रहा है। इस तरह मारूति उद्योगों से लेकर स्थानीय कान्ट्रेक्टर एक मजदूरों का बहुत शोषण करते हैं।

मजदूरों की प्रकृति

वैश्वीकरण व उदारीकरण की नीतियों के फलस्वरूप असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के संगठन व उनके कार्य की प्रवृति से बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। तकनीकी रूप से निपुण व शिक्षित मजदूर भी ठेके पर रखे जाते हैं। सूचना तकनीक के विकास के कारण एकाउंट्स डाटा फीडिंग जैसे कार्य भी ठेके पर कराये जाते हैं। वे लोग बहुत ही निपुण है तथा असंगठित क्षेत्र के अकुशल मजदूरों से ज्यादा पैसा पाते हैं। इन निपुण मजदूरों का बहुत शोषण होता है क्योंकि उनको कोई रोजगार गारन्टी तथा कोई अन्य सामाजिक सुरक्षा गारन्टी नहीं है तथा मालिक इनके सेवाओं से बहुत लाभ कमाते हैं। ये लोग ट्रेड यूनियन आंदोलन से बिल्कुल अछूते हैं।

असंगठित क्षेत्र का बड़ा भाग महिला मजदूरों तथा बाल मजदूरों का है। कामकाजी महिलाओं का 96 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में है। असंगठित क्षेत्र का बड़ा भाग एस सी, एस टी व पिछड़ी जातियों का दबा-कुचला व शोषित तबका है जो पूँजीपतियों के शोषण व सामाजिक उत्पीड़न का शिकार रहा है।

मजदूरों की खराब होती स्थिति

उदारीकरण के तहत सरकार ने वैसे हजारों वस्तुओं के नि:शुल्क आयात की अनुमति दी है जो हमारे लघु उद्योगों द्वारा उत्पादित की जा रही है। बड़े पूंजीपतियों को उन वस्तुओं के उत्पादन को अनुमति दी गई है जो पहले लघु क्षेत्र के उद्योग के लिए आरक्षित था। जिसके फलस्वरूप असंगठित क्षेत्र के हजारों लघु उद्योग बंद हुए तथा लाखों मजदूर बेरोजगार हुए। वे अनौपचारिक क्षेत्र में विभिन्न अनियमित रोजगार में वापस आये।

सामाजिक तथा निजी दोनों ही क्षेत्रों के उपक्रमों में श्रम शक्ति का आकार कम करने, लाखों औद्योगिक इकाईयों के बंद हो जाने और उपक्रमों द्वारा उत्पादन की लागत कम करने तथा प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिए उठाए गए कदमों के फलस्वरूप श्रमिक अपना रोजगार खोते चले जा रहे हैं। इसके कारण असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों की भीड़ और बढ़ गई है।

इस क्षेत्र के श्रमिकों की कामकाजी स्थितियां पहले ही शोचनीय थीं, वह और अधिक खराब हो गई है।

असंगठित क्षेत्र के बहुत से उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी एक्ट को शामिल नहीं किया गया है। न्यूनतम मजदूरी को निर्धारित करने के लिए सरकार पंद्रहवें भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा प्रस्तावित आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी की अवधारणा को स्वीकार नहीं कर रही है। इसके विपरीत निर्धारित की गई न्यूनतम मजदूरी गरीबी रेखा से भी कम है। 90 प्रतिशत मामलों में न्यूनतम मजदूरी को लागू नहीं किया जाता। नियोजक न्यायालय से न्यूनतम मजदूरी के विरुद्ध स्थगन आदेश ले लेते हैं तथा मामला वर्षों तक लम्बा खिंचता है।

बहुत से क्षेत्रों में बंधुआ मजदूरों की भी यही स्थिति है। कुछ राज्यों में मजदूरों से जबरन हस्ताक्षर लिया जाता है जबकि उन लोगों ने नियोजक से कोई ऋण नहीं लिया होता है। इसका प्रयोग उस समय मजदूरों को डराने के लिए किया जाता है जब वे ज्यादा मजदूरी व अन्य लाभ की माँग करते हैं। प्राय: मजदूरों को ज्यादा राशि पर हस्ताक्षर करना पड़ता है जबकि उन्हें बहुत कम मजदूरी दी जाती है।

असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिए न तो सामाजिक सुरक्षा है और न ही रोजगार की सुरक्षा। ज्यादातर मजदूर अपने रोजगार खोने की आशंका से भयभीत रहते हैं। नियुक्ति पत्र, वेतन स्तरीय व परिचय पत्र आदि नहीं दिया जाता है। वे महंगाई भत्ता भी नहीं पाते हैं। भविष्य निधि, ईएसआई जैसे सामाजिक सुरक्षा लाभ भी उन्हें नहीं मिलते हैं। 35 करोड़ की श्रम शक्ति में से केवल 22 करोड़ श्रमिकों को भविष्य निधि का लाभ, 9 करोड़ को ईएसआई योजना, 4.5 करोड़ को कामगारों की क्षतिपूर्ति योजना तथा 0.5लाख को प्रसूति लाभ अधिनियम का लाभ मिलता है।

अनौपचारिक क्षेत्र के मजदूरों में महिला मजदूरों का बड़ा हिस्सा है। उन्हें पुरुष के समाज मजदूरी नहीं दी जाती है। प्रसूति लाभ से वंचित रखा जाता है। नियोजक व कान्ट्रेक्टर द्वारा यौन उत्पीड़न किया जाता है। प्रशिक्षु के नाम पर या कम मजदूरी पर बच्चों को रखा जाता है।

श्रम विभाग सुरक्षा के नियमों को लागू करवाने तथा असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की सुरक्षा के लिए कुछ नहीं करता, उसका रुख लापरवाही वाला होता है। वे संरक्षणात्मक कानूनों का कार्यान्वयन भी सुनिश्चित नहीं बनाते। श्रम विभाग के अधिकारी बहुत सी घटनाओं में नियोजक के साथ सांठगांठ करके उनके स्वार्थों की

पूर्ति के लिए काम करते पाये गये हैं।

असंगठित क्षेत्र के मजदूर शोषित होने के अलावा अपने रिहायशी इलाके में दयनीय स्थिति में रहते हैं। अधिकतर को उचित जगह नहीं है तथा वे स्लम में रहते हैं जहाँ पीने योग्य पानी व सफाई की समुचित व्यवस्था नहीं होती।

असंगठित क्षेत्र को संगठित करना

असंगठित क्षेत्र के लगातार विस्तार को देखते हुए इसके मजदूरों को संगठित करना बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। देश के सम्पूर्ण रोजगार का 90 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में है जो सम्पूर्ण देश में फैला हुआ है। मैनुफैक्चरिंग मजदूर, बोझा ढोने वाला मजदूर, आँगनवाड़ी कर्मचारी, पंचायत कर्मचारी, ग्रामीण चौकीदार आदि सभी गाँवों में है। ज्यादातर असंगठित क्षेत्र के मजदूर खेतिहर मजदूर हैं या गरीब किसान परिवार से हैं। उनको संगठित करना तथा उनके राजनैतिक चेतना का विकास करना हमें मजदूर वर्ग के इस बड़े तबके को प्रभावित करने में समर्थ बनायेगा।

हालाँकि हम असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को संगठित करने के महत्व पर हमेशा बल देते रहे हैं लेकिन इस क्षेत्र में हमारी प्रगति बहुत धीमी है। संगठन पर भुवनेश्वर रिपोर्ट इस बात को बताया है कि इस क्षेत्र में हमारी कमजोरी बिल्कुल नजर आती है। यद्यपि हाल में हमने असंगठित को संगठित करने के लिए कुछ प्रयास किये हैं तथा कलकत्ता में सफल अखिल भारतीय सम्मेलन का आयोजन किया गया लेकिन हमारी ताकत अभी सांकेतिक हैं। यह वर्ग बहुत कम न्यूनतम मजदूरी तथा रोजगार के सुरक्षा गारंटी के बिना बहुत ज्यादा शोषित है। इस क्षेत्र में आंदोलन की प्रगति की सबसे अधिक संभावना इस बात से स्पष्ट है कि सी आइ टी यू के आह्वान पर 14 जुलाई 1993 को अखिल भारतीय स्तर पर हड़ताल बहुत कामयाब रही थी। यही समय है कि सी आइ टी यू को चाहिए कि इस कार्य को प्राथमिकता देकर गंभीरता से करे ताकि मजदूर वर्ग के बड़े हिस्से को ट्रेड यूनियन आंदोलन के मुख्यधारा में लाया जा सके।

असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को संगठित करने का यह अर्थ नहीं है कि हम संगठित क्षेत्र के मजदूरों को संगठित करने के टास्क को नकारते हैं।

यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि असंगठित क्षेत्र में मैनुफैकचरिंग उद्योगों के मजदूरों को संगठित करने के काम को प्राथमिकता दी जानी चाहिए

क्योंकि वे देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं।

किसी यूनियन को संगठित करना कोई आसान काम नहीं है, खासकर इस वर्तमान परिस्थिति में जब ट्रेड यूनियन आंदोलन तथा श्रमिक वर्ग पर आक्रमण बढ़ रहा है। लेकिन असंगठित मजदूरों को संगठित करने के लिए बहुत धैर्य की जरूरत है। असंगठित करने के लिए बहुत धैर्य की जरूरत है। असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की समस्याओं को सामान्य ट्रेड यूनियन आंदोलन द्वारा नजरअन्दाज किये जाने के लिए यह एक कारण हो सकता है। बहुत से नेता उनको संगठित करने के प्रयासों से सहमत नहीं है। सी आइ टी यू को यह साबित करना है कि वह इस टास्क को गंभीरता से पूरा करने के लिए दृढ़संकल्प है।

उपरोक्त वर्णित सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को संगठित करने के लिये कार्य नीति का निर्धारण एवं उसे विकसित करना आवश्यक है। अनौपचारिक क्षेत्र के विभिन्न व्यवसायों/उद्योगों/क्षेत्रों में कार्यरत श्रमिकों तथा कर्मचारियों की स्थितियां अलग-अलग हैं। विभिन्न व्यवसायों/क्षेत्रों के श्रमिकों को संगठित करने के लिये विभिन्न विधियां अपनाई जा सकती हैं, यह बात प्रत्येक व्यवसाय/क्षेत्र की ठोस स्थितियों पर निर्भर करती है। अपनी सहायता स्वयं करने वाले समूहों/बचत समूहों जैसे कुछ मध्यस्थ संगठनों को बना कर उनकी एकता को मजबूत करके श्रमिकों में आत्मविश्वास पैदा करना आवश्यक होगा।

फेरीवाला, रिक्शावाला, आटो ड्राईवर तथा बड़ी संख्या में स्व: रोजगार में लगे लोग असंगठित मजदूरों का बहुत बड़ा हिस्सा हैं। उनकी प्रमुख माँगों जैसे कल्याणकारी फण्ड, पुलिस तथा असामाजिक तत्वों द्वारा उत्पीड़न से सुरक्षा आदि की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

जाति, लिंग-भेद जैसे सामाजिक मुद्दों तथा उनके कार्य स्थल पर सफाई पानी, राशनकार्ड आदि की समस्याओं पर भी ध्यान देना होगा। सिर्फ संगठन के कार्यालय से कार्य करने की प्रवृत्ति को त्यागना होगा तथा हमारे कामरेड को मजदूरों के बीच जाना होगा तथा उनके जीवन का हिस्सा बनने की कोशिश करनी होगी। उन्हें स्थिति के अनुसार उनके कामकाजी स्थलों अथवा उनके आवासीय क्षेत्रों में जाना होगा। उनकी दिन-प्रतिदिन की समस्याओं के निराकरण हेतु कामकाजी स्थलों तथा आवासीय क्षेत्रों में उचित ढंग से हस्तक्षेप करके और उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का अंग बन कर हमें उनमें यह विश्वास पैदा करना होगा कि किसी भी समस्या के लिए कभी भी संगठन के पास पहुँच सकते हैं तथा सहायता ले सकते हैं।

उन श्रमिकों में से कार्यकर्ताओं का विकास करना एक अनिवार्य कार्य है। सर्वप्रथम असंगठित क्षेत्र में विभिन्न व्यवसायों/उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों को संगठित करने के लिये बाहर से कार्यकर्ताओं को लाना पड़ सकता है; उन कार्यकर्ताओं का दायित्व होगा कि वे न केवल उन श्रमिकों में से कार्यकर्ताओं की पहचान करें अपितु उन्हें यूनियन के उच्चतर पदों पर भी नियुक्त कराएं। कार्यकर्ताओं का आबंटन करते समय यह भी महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक व्यवसाय/उद्योग की विशेष प्रकृति का अध्ययन किया जाए और उन योग्य कार्यकर्ताओं को नियुक्त किया जाए जो यह काम प्रभावशाली ढंग से करने में सक्षम हों। किसी विशेष व्यवसाय/उद्योग/क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों/कर्मचारियों की मांगों तथा समस्याओं का पता लगाया जाए। मांगों का निर्धारण किया जाए तथा उनकी प्राप्ति के लिये इन श्रमिकों की अपेक्षाओं, जागरूकता तथा तैयारी के स्तर को ध्यान में रखते हुए अभियानों एवं आंदोलनों की उपयुक्त विधियां अपनाई जानी चाहियें।

सी आइ टी यू के नौवें महाधिवेशन में यह नोट किया गया था कि हाल के समय में बहुत से विदेशी सहायता प्राप्त एन जी ओ का असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के बीच क्रिया कलाप बढ़ा है। वे ट्रेड यूनियन की भूमिका को कम बताकर अपने आपकी इस क्षेत्र का प्रतिनिधि होने का दावा करता है। सरकार व अंतराष्ट्रीय मजदूर संगठन भी उनके दावों का समर्थन करती है। हालाँकि बहुत कम एन जी ओ मजदूरों की सहायता के लिए चिन्तित है जबकि ज्यादातर उनको वर्गीय मुद्दों पर संगठित नहीं करते। वर्गीय शोषण के वास्तविक मुद्दों को प्राय: छोड़ दिया जाता है। उनको मिलने वाली बड़े विदेशी सहायता व सरकारी प्रोत्साहन को देखते हुए हमें सावधान रहना होगा ताकि वे कोई तोड़फोड़ वाली भूमिका न निभा पाये।

गैर सरकारी संगठनों की गतिविधियां प्रमुखतया अपनी सहायता स्वयं करने वाले समूहों का गठन करने तक ही सीमित हैं, वे समूह स्थानीय स्तर पर ऋण तथा अन्य सेवाएं उपलब्ध कराते हैं। लोगों में ये भ्रम उत्पन्न करके कि उनकी सभी समस्याओं का निराकरण वर्तमान समाज में किया जा सकता है, वे श्रमिकों को श्रमिक संघों से दूर करना चाहते हैं। इसे पूंजीपति श्रेणियों द्वारा श्रमिक वर्ग पर किये जा रहे विचारधारात्मक हमले के एक भाग के रूप में ही देखा जाना चाहिये। जहां हमारे लिये कभी कभार इस प्रकार के मध्यस्थ प्रकृति के संगठनों के माध्यम से श्रमिकों के साथ सम्पर्क करना आवश्यक हो जाता है वहीं हमें उन्हें एक श्रेणी के रूप में संगठित करने तथा उनमें वर्गीय चेतना बढ़ाने के लिये अथक प्रयास करने चाहियें।

कमजोरियों का बरकरार रहना - उनको दूर कैसे किया जाये

वैसे राज्य व क्षेत्र जो औद्योगिक रूप से विकसित नहीं है वहाँ भी असंगठित क्षेत्र का विस्तार हो रहा है। हम देखते हैं कि असंगठित क्षेत्र में लाखों मजदूर हैं। कोई भी प्रमुख ट्रेड यूनियन इनकी समस्याओं पर ध्यान नहीं देती तथा इन्हें संगठित करने के लिए नहीं सोचती। हमने निश्चय किया है कि इन्हें प्राथमिक टास्क के रूप में संगठित करेंगे। फिर भी हम अखिल भारतीय स्तर पर असंगठित क्षेत्र के किसी बड़े उद्योग में बड़ा ताकत होने के नजदीक भी नहीं पहुंच पाये हैं, ऐसा क्यों ?

अखिल भारतीय केन्द्र तथा राज्यों में हमारी सांगठनिक दुर्बलताएं पूर्वत: बनी हुई हैं। अनेक राज्यों में अभी तक अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों के लिये समन्वय समितियों का गठन नहीं किया जा सका है। अधिकांश राज्य समितियों द्वारा इस दिशा में न सुनियोजित प्रयास किये गए हैं और न ही प्राथमिकताएं निश्चित की गई हैं। अखिल भारतीय केंद्र भी निरंतर अपने द्वारा लिये गए निर्णयों पर अनुवर्ती कार्रवाईयां नहीं करता और न ही वह निर्णयों के कार्यान्वय की जांच एवं निरीक्षण करता है।

इन दुर्बलताओं को दूर करने तथा असंगठित क्षेत्र में हमारे आंदोलन को सुदृढ़ बनाने के लिये पूरी गम्भीरता के साथ अधोलिखित कदम उठाए जाने चाहियें; ये कदम उठाना नितांत आवश्यक है।

1. और अधिक कार्यकर्ताओं को तैनात करके अखिल भारतीय केन्द्र को मजबूत बनाया जाए।

2. सभी राज्य समितियां अपनी प्राथमिकताओं का निर्धारण करें तथा उन पर विचार करें। जहां कहीं राज्य स्तरीय समन्वय समितियों का गठन नहीं किया गया है, वहां उनका गठन किया जाए।

3. उद्योग/व्यावसायवार यूनियनों का गठन किया जाए।

4. प्राथमिकता वाले उद्योगों में असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की समस्याओं पर अध्ययन/सर्वेक्षण कराया जाए और उनकी ठोस मांगों का निर्धारण किया जाए। अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए स्थानीय कार्रवाईयां करने की अपेक्षा राज्यव्यापी अभियान चलाए जाएं।

5. प्रत्येक व्यवसाय/उद्योगवार संगठन के लिये उपयुक्त कार्यकर्ताओं को

नियुक्त किया जाए। जहां महिलाएं बड़ी संख्या में काम करती हैं वहां महिला कार्यकर्ताओं की नियुक्ति को पहल दी जाए।

6. श्रमिकों में से कार्यकर्ताओं का विकास करने, उन्हें प्रशिक्षित करने तथा उन्हें पदोन्नत करके नेतृत्वकारी पदों पर लाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।

7. कामकाजी स्थलों की समस्याओं के साथ-साथ सामाजिक तथा यौन उत्पीड़न और साक्षरता एवं आवासीय समस्याओं का निराकरण भी यूनियनों के द्वारा किया जाना चाहिये।

8. असंगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों में अपनी एकता की शक्ति पर विश्वास पैदा करने के लिये अपनी सहायता स्वयं करने वाले समूहों/बचत/समूहों /ऋण समूहों जैसे माध्यमिक संगठनों का गठन करने पर भी विचार किया जाना चाहिये।

बेरोजगारी तथा श्रमिक संगठन

1:1 इस आलेख का उद्देश्य तथा सम्भावनाएं सामान्य रूप में बेरोजगारी के आयामों जो ऊंचे से ऊंचे उठते चले जा रहे हैं और उसकी बदलती प्रकृति के प्रत्यक्ष ज्ञान एवं अवधारणामूलक पक्षों पर विचार करना है। भारत के संदर्भ में इस समस्या के ठोस प्रकटीकरण पर प्रकाश डालने वाले आंकड़ों पर आधारित कार्य (पुस्तिका) का प्रकाशन पहले ही सी आइ टी यू की ओर से ''गरीबी, महंगाई तथा बेरोजगारी'' शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है। इस लिये हमारे इस नये आलेख एवं पुस्तिका के प्रकाशन का प्रमुख उद्देश्य विशेष रूप से वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय क्रांति के संदर्भ में इस समस्या की मूल जड़ का पता लगाना, उस पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित करना है, उस पर साम्राज्यवादी भूमण्डलीयकरण तथा पूंजीवादी बाजार अर्थव्यवस्था की दृष्टि से विचार करना है, इस विकट समस्या के साथ निपटने में श्रमिक वर्ग की भूमिका क्या हो सकती है और बेरोजगारी विरोधी संघर्ष को समान की किसी श्रेणी की परिधि में सीमित किये बिना जन संघर्ष के रूप में परिवर्तित करने के लिये पहलकदमी किस प्रकार की जा सकती है; इन सब बातों का पता लगाना है।

1:2 इस विषय की गहरी समझ विकसित करने तथा इसके विशिष्ट एवं विभिन्न चरणों का पता लगाने के उद्देश्य से बेरोजगारी की समस्या को बद से बहतर बनाने वाले विभिन्न अंशदायी कारकों को रेखांकित किया जाना आवश्यक है। किन्तु इस प्रकार का काम करते समय विभिन्न कारकों तथा चरणों के परस्पर जोड़ने वाले बिन्दुओं को दृष्टिलोप करने की भूल नहीं की जानी चाहिये। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक की पहचान ''वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय क्रांति'' (एस टी आर) बनाम पूंजीवादी आर्थिकता, ''साम्राज्यवादी भूमण्डलीयकरण'', ''बाजार अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त'' के रूप में की जा सकती है।

2. अंशदायी कारक

2:1 बेरोजगारी की समस्या की मूल जड़ पूंजीवादी आर्थिकता है, यह तथ्य पूंजीवादी आर्थिकता के चल रहे संकट के प्रादुर्भाव के संयोग से बेरोजगारी की स्थिति के बिगड़ने के साथ समय-समय पर बार-बार प्रमाणित हो चुका है। इस सम्बन्ध में किये गए विभिन्न अध्ययनों ने दर्शाया है कि बेरोजगारी की मूल समस्या के गम्भीर रूप से प्रबल होने के वर्तमान चरण की प्रक्रिया 1970 के दशक के अंतिम भाग से ही शुरू हो गई थी। यहां फिर कहेंगे, यह वही अवधि थी जिसमें वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय क्रांति (एस टी आर) के नये युग का सूत्रपात हुआ था।

2:2 किन्तु पूंजीवादी आर्थिकता का नियम कुछ अलग ही है, इस आर्थिकता के अन्तर्गत एस टी आर युग की आधुनिक प्रौद्योगिकी को प्रयोग में लाने के निदेशक सिद्धान्त की एक मात्र धुरी प्रकट रूप में केवल लाभ का चिंतन ही है। इसका दुष्परिणाम प्रौद्योगिकी के अभिनव अविष्कारों को उपयोग में लाने के कारण किस खतरनाक सीमा तक श्रमिकों की विशाल संख्या अतिरिक्त हो रही है, उसका कोई हिसाब नहीं रखे जाने के रूप में निकला। यही नहीं सेवामुक्त होने वाले श्रमिकों के लिये रोजगार के अतिरिक्त अर्थात् नये अवसरों सुलभ कराने के लिये भी कदम नहीं उठाए गए।'' संकट की इस प्रक्रिया में उभरे लक्षणों का वर्णन एक शास्त्रीय रचना ''**पूंजीवाद, प्रौद्योगिकीय क्रांति तथा श्रमिक वर्ग**'' में इस प्रकार किया गया है: ''... ...सर्वत्र प्रभावी मांग में कमी आ जाना और इसका परिणाम अपेक्षाकृत अति उत्पादन के रूप में निकलना, बढ़ती चली जा रही उग्र प्रतियोगिता और इसी प्रकार की अन्य संवृत्तियां उत्पादक गतिविधियों को लगाम देने के कारक के रूप में काम करती हैं, इसके चलते कारोबार का परिसमापन, श्रमिकों के भारी संख्या में अतिरिक्त होने जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। इसके दुष्परिणामस्वरूप रोजगार खो देने वाले लोगों की नित्य नयी भीड़ बेरोजगारों की पहले से भारी भरकम सेना की पंक्तियों में सहाहित हो रही है और ये पंक्तियां अधिक लम्बी होती चली जा रही हैं।''

2:3 एस टी आर के युग में प्रौद्योगिकी की उत्पादक क्षमता तथा सम्पूर्ण मानवता की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के उसके सामर्थ्य अपार वृद्धि हो गई है। हवाना में आयोजित जी-77 देशों के शिखर सम्मेलन में 12-4-2000 को भाषण देते समय फीदल कास्त्रो ने कहा था, ''पहले कभी भी मानवता के पास इतनी अपार वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय शक्ति एवं सामर्थ्य नहीं था, सम्पन्नता लाने एवं कल्याण की इतनी

अधिक असाधारण क्षमता नहीं थी और न ही पहले कभी भी विश्व में इतना गहरी असमानता तथा विषमता थी, जितनी वर्तमान में देखने को मिल रही है।'' मूलभूत समस्या यह है कि पूंजीवाद उत्पादन की शक्तियों के विकास के अनुरूप उत्पादन सम्बन्ध उपलब्ध कराने में अक्षम है। इसी लिये अलेग्जांदर गालकिन ने कहा था, ''प्रौद्योगिकीय प्रगति द्वारा उपलब्ध कराए गए सकारात्मक अवसरों को कार्यरूप देने के लिये विशेष प्रकार की सामाजिक स्थितियों की आवश्यकता होती है, अन्यथा यह अनेक क्षेत्रों में प्रतिगामी बन जाती है।''

2:4 इस समस्या का मर्म एस टी आर नहीं यद्यपि यह पूंजीवाद समाज में बेरोजगारी बढ़ाने का एक अंशदायी कारक है। ''प्रश्न पूर्वत: बना हुआ है: एस टी आर की उपलब्धियों का उपयोग किसके लाभ में होगा...जनसाधारण की विशाल संख्या अथवा मुट्ठी भर पूंजीपतियों, मालिकों की श्रेणी के हित में।'' वर्तमान दुरावस्था की वास्तविक अपराधी पूंजीवादी समाज व्यवस्था तथा पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध हैं। प्रौद्योगिकीय क्रांति तथा उसके फलस्वरूप उत्पादन की शक्तियों का विकास विज्ञान का एक ऐसा योगदान है जिसे रोका नहीं जा सकता। इस विभीषिका अथवा दुरावस्था का उपचार विज्ञान के मार्ग को बदलने में नहीं अपितु जो पूंजीवादी समाज को बदल कर ही किया जा सकता है जो इसके अनुकूल नहीं है।

3. साम्राज्यवादी भूमण्डलीयकरण

3:1 वर्तमान में जारी नव उदार भूमण्डलीयकरण की संवृत्ति पर अपने एक विश्लेषणात्मक भाषण में फीदल कास्त्रो ने कहा था, ''मेरा विश्वास है कि भूमण्डलीयकरण एक अपरिवर्तनीय प्रक्रिया है और समस्या भूमण्डलीयकरण की नहीं अपितु भूमण्डलीयकरण के प्रकार की है...भूमण्डलीयकरण को नव उदारवाद (उदारीकरण) के ढांचों में कस कर रखा गया है, इसी लिये इसके विकास की परिणति भूमण्डलीय नहीं अपितु दरिद्रता के रूप में होती है; यह हमारे राज्यों की राष्ट्रीय प्रभुसत्ता का सम्मान नहीं करता अपितु उसका उल्लंघन करता है, यह हमारे लोगों में एकजुटता नहीं अपितु असमान प्रतिस्पर्धाओं का संदेश देता है जिनकी व्याप्ति बाजार स्थलों में होती है।''

3:2 साम्राज्यवादी भूमण्डलीयकरण का बेरोजगारी की विश्वव्यापी समस्या को और अधिक विकट बनाने में प्रमुख योगदान है, यह स्पष्ट ही है। पूरे भूमण्डल के लगभग सभी देश—विकसित, विकासशील तथा अर्ध विकसित—बेरोजगारी की

समस्या से प्रभावित हुए हैं—हां, उनके प्रभावित होने की डिगरी अलग-अलग है और शायद उसकी दिशाएं भी अलग-अलग हैं। संयुक्त राष्ट्र ने स्वीकार किया है कि, ''बेरोजगारी तथा अर्ध रोजगारी की समस्या—विशेष रूप से युवा पुरुषों तथा महिलाओं में—पूरे भूमण्डल के देशों को प्रभावित करती है।'' (नेशनल हैरल्ड, 19-10-99)

3:3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष-विश्व बैंक की ओर से अक्टूबर 1999 में वाशिंगटन डी सी में ''बेरोजगारी की चुनौती'' विषय पर आयोजित एक संगोष्ठी में भाषण देते समय प्रमुख महासचिव कोफी अन्नान ने कहा था, ''अपने कथन का प्रारम्भ मैं आपको स्मरण कराते हुए करूँगा कि विश्व में 13 अरब के लगभग लोग एक डालर से भी कम दैनिक आय पर किसी न किसी प्रकार अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं...लाखों-करोड़ों योग्य व्यक्ति बेरोजगार अथवा अर्ध रोजगार प्राप्त हैं। यह स्थिति एक संकट से भी भयानक है। यह एक घोटाला है। नयी शताब्दी के पहले दशकों में इस समस्या को नियंत्रित करना हमारी सर्वोपरि प्राथमिकता होनी चाहिये।''

3:4 अंकटाड (यू एन सी टी ए डी) की फरवरी 2000 में बैंकाक में आयोजित एक बैठक में भाषण देते हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के महानिदेशक श्री जुआन सोमाविया ने तथाकथित बाजार अर्थव्यवस्था की आलोचना की थी और उन्होंने कहा था, ''हम बाजार के मूल सिद्धान्तों के विषय में पर्याप्त जानकारी रखते हैं—यही समय है कि हम लोगों के जीवन में इन मूल सिद्धान्तों की भूमिका की ओर ध्यान दें...वित्तीय नीतियां उस दिशा में चलाई जानी चाहियें जहां उत्पादक निवेशों को गति मिलती हो, जहां अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय बाजारों में अल्पावधि की जुआ घर (कैसिनो) अर्थव्यवस्था को बनाए रखने की अपेक्षा रोजगारों का सृजन होता है।''

4. भूमण्डलीय परिप्रेक्ष्य

4:1 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की वर्ष 1998-99 की विश्व रोजगार रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि विश्व भर में बेरोजगारों तथा अर्ध रोजगार श्रमिकों की कुल संख्या ने पिछले सारे रिकार्ड तोड़ डाले हैं। किन्तु इससे भी कहीं अधिक विचलित कर देने वाली बात यह प्रस्तुतिकरण है कि ''एशिया तथा विश्व के अन्य भागों में थोड़े ही समय में वित्तीय संकट के परिणामस्वरूप लाखों लोगों की संख्या और बढ़ जाएगी।''

4:2 आइ एल ओ के अनुमानों के अनुसार विश्व में कुछ तीन अरब कामकाजी लोगों पर आधारित श्रम शक्ति में से लगभग एक अरब लोग पूर्वत: बेरोजगारी अथवा अर्ध रोजगारी की चपेट में रहेंगे। इनमें से लगभग चौदह करोड़ लोग पूर्णतया बेरोजगार हैं। एक बार पुन: कहेंगे कि हाल ही के वर्षों के पूर्वी एशिया के आर्थिक संकट के कारण व्यापक स्तर पर श्रमिकों का विस्थापन होने के चलते और लगभग एक करोड़ लोग बेरोजगार हो गए हैं। अत: शेष लगभग 85 करोड़ लोग अर्ध रोजगारी से पीड़ित हैं। आइ एल ओ की रिपोर्ट में विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में बेरोजगारी की बिगड़ती चली जा रही स्थिति पर विस्तार में चर्चा की गई है। हमारी चर्चा के लिये एशिया तथा जी-7 देशों में व्याप्त स्थिति पर दृष्टि डालना रुचिकर होगा।

4:3 एशिया में अर्थ व्यवस्थाओं की प्रगति एवं गिरावट नाटकीय थी। रिपोर्ट में क्षेत्र के कुछ देशों की स्थिति का उल्लेख किया गया है। बेरोजगारी में वृद्धि की स्थिति इस प्रकार थी: इंडोनेशिया में 1996 के 4 प्रतिशत की तुलना में 9 से 12 प्रतिशत, थाईलैंड वर्ष 1995 में 4 से 7 लाख अथवा 1 से 2 प्रतिशत की तुलना में 6 प्रतिशत अथवा लगभग 20 लाख लोग रोजगार विहीन हैं। दक्षिण कोरिया में पिछले वर्ष रोजगार क्षतियों का क्रम और तेज हो गया है अर्थात् उसमें दोगुणा तेजी आ गई है अर्थात् बेरोजगारी 7 प्रतिशत तक पहुंच गई है। हांगकांग में बेरोजगारी की दर 1997 में 2.9 प्रतिशत थी और 1998 की दूसरी तिमाही के अंत तक तीखी वृद्धि होने के फलस्वरूप यह दर 4.5 प्रतिशत तक पहुंच गई। भारत, पाकिस्तान, बंगला देश के सम्बन्ध में रिपोर्ट ने चेतावनी दी है कि इन देशों की स्थिति और खराब हो जाएगी।

4:4 दूसरी ओर, ओ ई सी डी देशों के मामले में भी आइ एल ओ रिपोर्ट ने धूमिल स्थिति उत्पन्न होने की चेतावनी दी है: ''यद्यपि निकट भविष्य में कुछ सीमा तक रोजगार की स्थिति सुधर सकती है, तथापि बेरोजगारी की संरचना अब भी गम्भीर चिन्ता का विषय बनी हुई है। युवकों के मामले में सर्वत्र तथा महिलाओं के मामले में युरोप में बेरोजगारी की दरें प्राय: उच्चतर बनी रही हैं।''

4:5 एक और विचलित कर देने वाली भूमण्डलीय संवृति पढ़े-लिखे युवा श्रमिकों में बेरोजगारी की बढ़ती दरों की है। आइ एल ओ के अनुमान के अनुसार विश्व भर में 15 तथा 24 वर्ष की आयु वर्ग के लगभग छह करोड़ लोग रोजगार ढूंढ रहे हैं। अनेक ओ ई सी डी देशों में युवा लोगों की बेरोजगारी 20 प्रतिशत तक पहुंच

गई है। यह स्थिति विश्व भर में रोजगार सृजन की कम होने की संवृति की ओर संकेत करती है।

5. बेरोजगारी की विस्फोटक स्थिति

5:1 और हमारे देश में भी स्थिति अलग नहीं है। विकासशील देश होने के कारण बेरोजगारी की स्थिति अधिक भयावह बन चुकी है। भूमण्डीयकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण की कोष/बैंक निदेशित आर्थिक नीतियों के दुष्परिणामस्वरूप इस स्थिति में सुधार होने की कोई सम्भावना दिखाई नहीं देती।

5:2 देश में बेरोजगारी की विस्फोटक वृद्धि के पीछे प्रमुख कारकों में हमारी अर्थ व्यवस्था को तेजी के साथ मैन्युफेक्चरिंग से बाजार अर्थात् दूसरे शब्दों में लाभ की भूखी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिये आखेट का स्थल (अथवा विपणन मैदान) के रूप में परिवर्तित करना, औद्योगिक बीमारी, कामबंदी, चलने वाले औद्योगिक उपक्रमों का विलीनीकरण/अधिग्रहण इत्यादि सम्मिलित हैं। इनके फलस्वरूप श्रमिकों की व्यापक छंटनियां हो रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में दरिद्रता बढ़ रही है और भूमिहीन खेतिहर श्रमिकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जा रही है।

5:3 पिछले दशक में श्रम शक्ति के विकास तथा रोजगार वृद्धि के मध्य अन्तर निरंतर बढ़ता रहा है और इसके चलते बेरोजगारी की स्थिति और खराब हो गई है। योजना आयोग के कथनानुसार वर्ष 1994 के प्रारम्भिक वर्ष से शुरू दशक में रोजगार वृद्धि की वास्तविक वार्षिक दर श्रम शक्ति में वृद्धि की दर 2.5 प्रतिशत के विपरीत 2 प्रतिशत से भी कम रही थी। वर्ष 1991-96 के मध्य श्रम शक्ति में 2.38 प्रतिशत की वार्षिक आनुपातिक वृद्धि के विपरीत रोजगार 1.9 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ा जो विशेष रूप से 1991 के पश्चात् चल रहे खराब रुझान को दर्शाता है। एक सरकारी अनुमान के अनुसार देश में बेरोजगारी का बैकलाग आठवीं पंच वर्षीय योजना के अंत तक 3.5 करोड़ की ऊंचाई पर था जबकि आठवीं पंच वर्षीय योजना का प्रारम्भ में यह बैकलाग 2.3 करोड़ था।'' योजना आयोग ने यह प्रस्तुतिकरण लगभग 100 करोड़ जनता के आधार पर किया है जो वर्ष 2002 में लगभग 102 करोड़ हो जाएगी।

6. बेरोजगारी के कुछ विशेष विचलित कर देने वाले पक्ष

6:1 नवीनतम एन एस एस रिपोर्ट पर आधारित अनुमानों के अनुसार भारत में

37.40 करोड़ लोग रोजगार में थे। एक अध्ययन के अनुसार 78 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार पर लगे थे, उनमें से 65 प्रतिशत कृषि तथा उससे सम्बन्धित क्षेत्रों में थे। इन रोजगार प्राप्त लोगों में महिलाओं की संख्या एक तिहाई (32.5) है। सर्वेक्षण दर्शाता है कि कृषि क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों के अनुपात में आंशिक गिरावट आई हैं, वर्ष 1987 में इनकी संख्या 66.2 प्रतिशत थी जबकि 1993-94 में बढ़ कर केवल 64.8 प्रतिशत तक पहुंची। (हाशिम, 2000)

6:2 कारोबार पर निर्भरता की दृष्टि से श्रमिकों को तीन भिन्न-भिन्न श्रेणियों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है: (क) प्राथमिक क्षेत्र जो अधिकतर कृषि आधारित है, (ख) माध्यमिक क्षेत्र अर्थात् उद्योग एवं उत्पादन केंद्र तथा (ग) तृतीय क्षेत्र जिसमें व्यापार, सरकारी सेवाएं तथा असंगठित रोजगार सम्मिलित हैं। भारत पहले कृषि आधारित अर्थव्यवस्था था, इसलिये रोजगार सृजन हेतु अत्याधिक आशाओं के साथ प्राथमिक क्षेत्र की ओर देखा जाता था। यह आशा एवं वास्तविकता नि:संदेह आदर्श स्थिति का परिचायक नहीं है।

6:3 किन्तु इस पर भी यह प्राथमिक क्षेत्र कम गुणवत्ता वाले रोजगारों के सृजन के मामले में अच्छा कार्य प्रदर्शन नहीं कर रहा। देश के कृषि क्षेत्र में व्यापक स्तर पर विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अनुप्रवेश होने और डब्ल्यू टी ओ सत्ता के अन्तर्गत आयातों पर मात्रात्मक प्रतिबंध हटाने के दुष्परिणाम स्वरूप कृषि पर बहुत भारी दुष्प्रभाव पड़ना अनिवार्य हो गया है। व्यापक स्तर पर मशीनीकरण होने जिसमें आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग भी शामिल है और अन्य विभिन्न कारकों के चलते कृषि क्षेत्र में रोजगार सृजन में जबरदस्त कमी आ जाएगी। एक बार पुन: कहेंगे, कहीं कम पूंजी के निवेश वाला छोटे उद्योगों का क्षेत्र समग्र रूप में पूंजी की सघनता वाली बड़ी औद्योगिक इकाईयों की अपेक्षा अधिक रोजगार उपलब्ध कराता है। भारतीय सांख्यकीय सेवा द्वारा कराए गए अध्ययन के अनुसार 100 करोड़ रुपये से अधिक पूंजी के आकार वाली औद्योगिक इकाईयों जिनका औद्योगिक क्षेत्र की कुल पूंजी में 61.76 प्रतिशत भाग है, में प्रति इकाई रोजगार के आनुपातिक आकार में लगभग 36 प्रतिशत गिरावट आई है। वर्तमान में सरकार द्वारा छोटे औद्योगिक क्षेत्र के प्रति अपनाई गई घोर विरोध की नीति के दुष्परिणामस्वरूप छोटे औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक बीमारी तथा कामबंदियां महामारी की सीमा तक बढ़ चुकी है, लाखों श्रमिकों को उनके रोजगारों से बाहर निकाला जा चुका है और वे रोजगार विहीन हो गए हैं।

6:4 एक और अचम्भित कर देने वाला तथ्य पढ़े लिखे लोगों में बेरोजगारी का बढ़ते चले जाना है, यह कटु सत्य शिक्षा के माध्यम से अच्छी रोजगार क्षमता तथा अधिकारिता के सिद्धांत की खिल्ली उड़ा रहा है। वर्ष 1981 की जन गणना के अनुसार बेरोजगार लोगों की कुल संख्या में से 70 प्रतिशत लोग साक्षर थे किन्तु 1991 की जनगणना में उनकी संख्या बढ़ कर 80 प्रतिशत हो गई है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण दर्शाता है कि 1983 से 1993-94 तक की अवधि में बेरोजगार लोगों में माध्यमिक अथवा उच्चतर शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का अनुपात 47 प्रतिशत से बढ़कर 64 प्रतिशत हो गया था (आई जे आफ लेबर इको. जनवरी—मार्च, 2000)। व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्राप्त लोगों में भी यही स्थिति बनी हुई है। ये तथ्य देश की अर्थव्यवस्था की अत्यंत गम्भीर स्थिति दर्शाते हैं जो शिक्षित एवं कुशल श्रम शक्ति को खपा पाने में असमर्थ है, यह प्रौद्योगिकीय—समावेशन की अल्प क्षमता को दर्शाता है।

6:5 युवा बेरोजगारी के प्रभाव क्षेत्र में और वृद्धि होते चले जाने के फलस्वरूप यह समस्या विकट बनती चली जा रही है, यह तथ्य नये रोजगारों के सृजन में तीखी गिरावट को दर्शाता है। संयुक्त राष्ट्र के अनुमानों एवं वक्तव्यों के अनुसार भारत में युवाओं का अनुपात 1995 में 18.9 प्रतिशत था और उनकी संख्या 17.50 करोड़ थी। वर्ष 2005 में उनका अनुपात बढ़ कर 19.5 प्रतिशत तथा संख्या लगभग 21 करोड़ हो जाएगी और संयुक्त राष्ट्र के उपरोक्त वक्तव्य के अनुसार वर्ष 2025 तक उनकी संख्या कुल मिलाकर 21.40 करोड़ से ऊपर चली जाएगी।

6:6 युवा बेरोजगारी के विस्फोटक पक्ष को उसके आर्थिक एवं सामाजिक बिन्दुओं के साथ-साथ समझा जाना चाहिये। एक शिक्षित युवक की बेरोजगारी समाज से उसका "निष्कासन" ही है; वह राष्ट्र निर्माण की उत्पादक गतिविधियों में अपना योगदान देने तथा उनमें भाग लेने से वंचित हो जाता है। युवा अपने मिजाज तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अतिसंवेदनशील होते हैं। युवाओं को व्यस्त रखना और सामाजिक प्रगति में उनकी रुचि को बनाए रखना आज विश्व में सर्वत्र मानव समाजों के लिये एक बड़ी चुनौती है (हिंग्गिन्स, 1997)। रिपोर्ट में युवा बेरोजगारी के व्यापक खतरे की ओर भी संकेत किया गया है, इस पर बल देते हुए कहा गया है कि युवाओं में रोजगारहीनता प्राय: बर्बरता, अपराधों, नशीली दवाओं के सेवन, समाज के प्रति उदासीनता, सामाजिक अशांति तथा टकरावों की ओर ले जा सकती है।

7. रोजगार की गुणवत्ता में खराबी

7:1 रोजगार की गुणवत्ता में निरंतर गिरावट आ रही है, यह एक अशांत कर देने वाला पक्ष है। रोजगार का अस्थायीकरण तेजी से बढ़ रहा है। वर्ष 1972-73 में यह 23 प्रतिशत था और 1993-94 में 32 प्रतिशत हो गया और 1999 तक 43 प्रतिशत से ऊपर चला गया था। शहरी क्षेत्रों में यह समस्या अधिक भयावह बन चुकी है। नियमित रूप से वेतन पाने वाले श्रमिक वर्ष 1972-73 में कुल श्रमिकों का केवल 15.4 प्रतिशत थे और यह प्रतिशत गिर कर 1993-94 में 13.2 हो गया था और दूसरी पीढ़ी के आर्थिक सुधारों के हमलों की मार से यह स्थिति और अधिक बिगड़ चुकी है। इस प्रकार की संवृति अस्थायी श्रमिकों की लम्बी होती चली जा रही पंक्तियों को संकेत करती है। वर्ष 1993-94 में अस्थायी श्रमिकों की संख्या 11.90 करोड़ थी जबकि स्व:रोजगार पर लगे व्यक्तियों की संख्या 20.50 करोड़ थी और नियमित रूप से वेतन लेने वाले श्रमिकों की संख्या 5.50 करोड़ थी (आई जे आफ लेबर इकनामिक, वालियम 43, नम्बर।) यह रुझान अनिवार्य रूप से बढ़ेगा और भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार द्वारा सर्वत्र संविदा रोजगार को कानून सम्मत एवं वैध बनाने की सक्रिय विधायी कार्रवाईयों की पृष्ठभूमि में स्थिति और अधिक बिगड़ जाएगी।

7:2 रोजगार की गुणवत्ता में खराबी लाने वाला एक और अंशदायी कारक अर्द्ध रोजगारी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों है। जहां स्वरोजगार पर लगे श्रमिकों की पहचान परोक्ष अर्द्ध रोजगार प्राप्त लोगों में होती है वहीं ऋतु निष्ठ श्रमिक जिन्हें पूरा वर्ष काम नहीं मिलता, को प्रत्यक्ष अर्द्ध रोजगार प्राप्त लोगों की श्रेणी में रखा जाता है। अर्द्ध रोजगारी पर हाल ही में कराए गए एक अध्ययन से पता चला है कि "5.1 प्रतिशत लोग भीषण रूप से अर्द्ध रोजगारी से पीड़ित हैं (उन्हें सप्ताह में तीन दिन से भी कम समय के लिये काम मिलता है); 23.9 प्रतिशत लोग साधारण रूप में अर्द्ध रोजगार पर लगे होते हैं (उन्हें सप्ताह में 3.5 से 5 दिनों तक काम मिलता है) और 66.5 प्रतिशत लगभग रोजगार प्राप्त होते हैं (उन्हें सप्ताह में 5.5 से 7 दिनों तक काम मिलता है)" (डाट-1999)।

7:3 रोजगार की स्थिति विशेष रूप से विकासशील देशों में, का सर्वेक्षण करते समय रोजगार की गुणवत्ता पर विचार करना तथा उसे ध्यान में लाना अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत जैसे विकासशील देश में रोजगार की गुणवत्ता को क्षति पहुंचाना बेरोजगारी तथा अर्द्ध रोजगारी का आंकलन कमतर करने और इस प्रकार रोजगार को

बढ़ा चढ़ा कर देखने के तुल्य है। हमारे जैसे विकासशील देशों जहां लोगों की एक बड़ी संख्या गरीबी की रेखा के नीचे रहती हो, श्रम शक्ति खाली बैठ नहीं सकती क्योंकि भूख की नंगी तलवार उनके सिरों के ऊपर लटकती रहती है और इस प्रकार वे कोई भी रोजगार स्वीकार करने के लिये विवश होते हैं; भले ही उसका पारिश्रमिक उन्हें अत्यंत अल्प नगद राशि के रूप में अथवा किसी और रूप में क्यों न मिले अथवा वे लगभग वंचना जैसी स्थिति में ही क्यों न रहते हों। दूसरे शब्दों में गरीब लोग बेरोजगार बने रहने की स्थिति में ही नहीं होते। आश्चर्य की बात तो यह है कि वर्ष 1993 में रोजगार पर लगे लोगों का लगभग एक तिहाई भाग गरीब है, उनका अनुपात सम्पूर्ण जनसंख्या में अन्य गरीबों जितना ही है। हमारे देश में बेरोजगारी की स्थिति की भयावहता के वास्तविक आयाम को समझने के लिये घोर दरिद्रता तथा रोजगार, बेरोजगारी तथा अर्द्ध रोजगार के मध्य निकट सम्पर्क को रेखांकित करना अत्यावश्यक है।

8. पुनर्गठन, छंटनी, पुनर्प्रशिक्षण, पुनर्नियुक्ति

8:1 हमारे देश में संगठित क्षेत्र जो व्यापक रूप से सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के उद्योगों, बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों, रेलवे, सरकारी विभागों इत्यादि पर आधारित है, से स्थायी रोजगार उपलब्ध कराने की अपेक्षा की जाती है। किन्तु कुल रोजगार के सृजन में इस क्षेत्र का भाग सत्रहवें और अस्सी के दशक में निश्चल बना रहा तथा नब्बे के दशक से इसने नकारात्मक मोड़ काट लिया है। हमारी अर्थ व्यवस्था के किवाड़ अंधाधुंध खोल देने और देश की औद्योगिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों के प्रत्येक क्षेत्र में विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के असीमित शत्रुतापूर्ण अनुप्रवेश का दुष्परिणाम वास्तव में रोजगार हत्याओं का कारण बना है। ''बाजार अर्थ व्यवस्था'' का आदर्श वाक्य प्रतिस्पर्धा है अर्थात् श्रम लागत को कम करके प्रतिस्पर्धा करना। अतः इसी से पता चल जाएगा कि हम किस प्रकार ''रोजगार विहीन विकास'' के इस विनाशकारी युग में प्रवेश कर चुके हैं।

8:2 हमारे देश में सार्वजनिक क्षेत्र ने रोजगार सृजन के मामले में प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया है; यह एक सुस्थापित तथ्य है। तथापि, उत्तरोत्तर सरकारों द्वारा जोरदार ढंग से अपनाई गई निजीकरण की घोर सार्वजनिक क्षेत्र विरोधी नीति के कारण स्थिति बदल चुकी है। सार्वजनिक एवं निजी दोनों ही क्षेत्रों के प्रबंधनों द्वारा तथाकथित पुनर्गठन के नाम पर श्रम शक्ति का आकार कम करने की कार्रवाई अब नित्य प्रतिदिन की बात बन चुकी है। उत्तरोत्तर सरकारों द्वारा घोषित पुनर्प्रशिक्षण एवं

पुनर्नियुक्ति सम्बन्धी योजनाएं एक बड़ा धोखा सिद्ध हुई हैं। अत्यंत शिक्षित, कुशल एवं अनुभवी श्रमिकों की स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति के नाम पर उद्योगों से छंटनी की जा रही है अथवा उन्हें मोमबत्ती, अगरबत्ती तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुएं बनाने के अकुशल एवं कम मेधा वाले कार्यों का पुनर्प्रशिक्षण देने की पेशकश की जाती है और उनकी पुनर्नियुक्ति की योजनाएं कुछ इसी प्रकार की हैं। स्वयं केन्द्रीय श्रम मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1995 तक छंटनी/स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति के अन्तर्गत रोजगार खो देने वाले लाखों-लाख श्रमिकों में से केवल 1475 श्रमिकों को ही पुन: काम पर लगाया गया था।

8:3 केन्द्रीय श्रम मंत्रालय की वर्ष 1999-2000 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार में 0.7 प्रतिशत की नकारात्मक वृद्धि रही। वास्तव में रोजगार बाजार सूचना प्रणाली के अन्तर्गत तैयार किये गए आंकड़ों के अनुसार वर्ष 1995-96 तथा 1996-97 के मध्य सार्वजनिक क्षेत्र में 2,00,000 रोजगारों की पूर्ण गिरावट आई थी (हिन्दू 19-5-1998)। और वर्ष 1998-2000 के मध्य सार्वजनिक क्षेत्र की केवल चार-पांच प्रमुख इकाईयों में ही 1.5 लाख से अधिक रोजगारों की क्षति हुई। वर्मा पैनल द्वारा निर्धारित लक्ष्य के अनुसार बैंकों के 20,000 से अधिक श्रमिकों को रोजगार से निकाल बाहर किया जाएगा। एक बार पुन: कहेंगे, भारतीय स्टेट बैंक ने हाल ही में एक लाख कर्मचारियों का बोझ कम करने अथवा उन्हें हटा देने सम्बन्धी अपने निर्णय की घोषणा की है। यदि सेल, भेल, सी आइ एल, एच एस सी एल, बैंकों इत्यादि सार्वजनिक क्षेत्र के विशालकाय उपक्रमों द्वारा श्रम शक्ति का आकार कम करने सम्बन्धी हाल ही में घोषित निर्णयों को कार्यरूप में परिणित किया जाता है और सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक उपक्रमों को बंद कर देने के निर्णय को कार्यान्वित किया जाता है तो कई लाख कर्मचारी अपने रोजगारों से हाथ धो बैठेंगे और वे देश में बेरोजगारों की विशाल सेना की लम्बी पंक्तियों में सम्मिलित हो जाएंगे।

8:4 केन्द्रीय एवं राज्य सरकारी, अर्द्ध सरकारी निकायों तथा स्थानीय निकायों पर आधारित सार्वजनिक क्षेत्र में एक मोटे अनुमान के अनुसार 1.90 करोड़ व्यक्ति काम पर लगे हैं जबकि संगठित क्षेत्र में कार्यरत लोगों की कुल संख्या लगभग 2.80 करोड़ है। अस्सी के दशक में 37 लाख नये रोजगार उपलब्ध कराए गए थे उनमें से सार्वजनिक क्षेत्र के पल्ले पड़े अतिरिक्त रोजगारों में 6 लाख रोजगार नब्बे के दशक में कम हो गए। किन्तु उससे भी अधिक रोजगारों की उसके साथ-साथ हत्या की गई है।

8:5 इस सम्बन्ध में निजीकरण की स्थिति भी कुछ अच्छी नहीं है। आधुनिकीकरण, विलीनीकरण तथा छंटनियों के कारण श्रम शक्ति का आकार कम किये जाने और कामबंदियों/औद्योगिक इकाईयों को अन्यत्र स्थानांतरित करने मात्र से कई लाख रोजगारों की हत्याएं कर दी गई हैं। इंजीनियरिंग, कपड़ा, औषध इत्यादि कुछेक क्षेत्र ऐसे हैं जहां व्यापक स्तर पर रोजगारों की क्षति हो चुकी है। उदाहरणार्थ अकेले महराष्ट्र राज्य में ही अप्रैल 1999 तक लगभग 3,500 बड़े कारखाने बंद हो चुके थे जिसके दो वर्षों की अवधि में 86,000 श्रमिक रोजगार विहीन हो गए थे। अकेले मुम्बई में बंद पड़ी औद्योगिक इकाईयों की संख्या 834 है जिनके लगभग 17,000 श्रमिक बेरोजगार हो गए हैं। राज्य में इसी अवधि में स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति के कारण 1.55 लाख रोजगारों की क्षति हुई।

8:6 वास्तविकता तो यह है कि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की संचालक बहुराष्ट्रीय कम्पनियां न तो सम्बन्धित देश में अधिक विदेशी पूंजी ला रही हैं और न ही वहां नये रोजगारों का सृजन कर रही हैं। इसके विपरीत बहुराष्ट्रीय कम्पनियां स्वदेशी पूंजी को चट कर गई हैं और उनके द्वारा रोजगारों की हत्याएं की गई हैं। सबसे बढ़ कर उन्होंने किसी भी विकासशील देश के साथ अपनी ''तकनीकी जानकारी तथा प्रौद्योगिकी'' का आदान प्रदान नहीं किया। हाल ही में कराए गए एक अध्ययन के अनुसार, ''पूंजी का आयात लाभों और रायल्टियों के वार्षिक निर्यात की अपेक्षा कहीं कम था; यही नहीं पूंजी का निवेश स्थानीय पूंजी बाजार में से जुटाई गई पूंजी के माध्यम से किया गया और लाभों का पुन: निवेश किया गया...'' बेरोजगारी की समस्या के समाधान की प्रक्रिया को भी गतिशील नहीं किया (जी के लीटेन, नीदरलैंड, 1999)। साम्राज्यवादी भूमण्डलीयकरण बेरोजगारी बढ़ा रहा है। आइ एम एफ के अध्ययन (सलाटर एण्ड स्वाज़ल—1997) में उल्लेख किया गया है, ''भूमण्डलीयकरण के साथ-साथ उच्चतर बेरोजगारी उत्पन्न हुई है।''

8:7 इसलिए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश शुद्ध रूप से रोजगारों का हत्यारा है; यह तथ्य प्रमाणित हो चुका है। इसी प्रमुख कारण के चलते हमारे देश में वास्तव में हुए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की राशि का 75 प्रतिशत भाग विलीनीकरण तथा अधिग्रहण के माध्यम से जुटाया गया। वर्ष 1993-94 से लेकर 1999-2000 तक इस प्रकार के विलीनीकरणों/अधिग्रहणों की कुल संख्या 256 तक पहुंच गई थी और अनेक अनेक अन्य उपक्रम इस नाली में बह जाने के लिये तैयार थे। उन सभी मामलों में अधिकार में ली गई कम्पनियों के विभागों को बंद कर देने, रोजगारों को नये ढंग से संगठित करने जैसी कार्रवाईयों के द्वारा बहुसंख्य श्रमिकों को निकाल

बाहर किया गया है।

8:8 वास्तव में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां पूरे विश्व भर में श्रमिकों की व्यापक छंटनियों का एक बदनाम अथवा कुख्यात प्रतीक बन चुकी हैं। आइ एल ओ की विश्व रोजगार रिपोर्ट 1996-97 में रेखांकित किया गया है—''1980 के दशक के आरम्भ से ही अनेक बड़े अमरीकी निगमों में रोजगारों की नाटकीय ढंग से क्षति हुई है...1978 तथा 1993 के मध्य जनरल मोटर्स में 2,50,000 रोजगार की क्षति; 1980 तथा 1990 के मध्य अमरीकी स्टील में 1,00,000 रोजगारों की क्षति; वर्ष 1981 तथा 1993 के मध्य जनरल इलेक्ट्रिक में 1,70,000 रोजगारों की क्षति; और 1981 तथा 1988 के मध्य एट एण्ड टी में 1,80,000 रोजगारों की क्षति हुई है...।''

9. सरकारी रोजगारों की निर्मम हत्याएं

9:1 भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार ने सरकारी कर्मचारियों की संख्या में भारी कटौती करने सम्बन्धी कदमों की संस्तुतियां देने के लिए पूर्व केन्द्रीय वित्त सचिव श्री के पी गीता कृष्णन की अध्यक्षता में ''व्यय सुधार आयोग'' (ई आर सी) के नाम से एक पांच सदस्यीय आयोग का गठन किया था। आयोग ने अपनी अंतरिम रिपोर्टें प्रस्तुत कर दी हैं। उसने विभिन्न मंत्रालयों के विभागों की बड़ी संख्या को बंद कर देने, रोजगारों का निजीकरण करने तथा कर्मचारियों की छंटनी करने की संस्तुति दी है। उदाहरणार्थ उसने सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के दस विभागों का बोझ करने अथवा उन्हें बंद कर देने और कर्मचारियों की वर्तमान संख्या 7,779 को कम करके 2,176 कर देने के लिये अपनी संस्तुति दी है। कोयला मंत्रालय के सम्बन्ध में आयोग ने प्राणघातक संस्तुतियां दी हैं, उसकी संस्तुतियों में खदानों का निजीकरण करने, सी आइ एल को तोड़कर सात स्वतंत्र कोयला कम्पनियां बनाने और नि:संदेह श्रमिकों की छंटनी करना भी सम्मिलित है।

9:2 ई आर सी ने सभी स्तरों पर केन्द्रीय सरकार के रोजगारों में 30 प्रतिशत कटौती करने सम्बन्धी पंचम केंद्रीय वेतन आयोग की संस्तुतियों को ही दोहराया है। यही नहीं, 3.5 लाख रिक्त स्थानों को समाप्त करने तथा उसके साथ ही नयी भर्ती को पूर्ण रूप से जाम करने अथवा उस पर प्रतिबंध लगाने के लिए संस्तुतियां भी दी गई हैं।

9.3 ज्ञातव्य है कि केन्द्रीय सरकार में 1970 के दशक से ही सुनियोजित ढंग से

रोजगारों की हत्याएं की जा रही हैं। सरकारी रोजगार की वृद्धि में भी जबरदस्त कमी आ चुकी है; वर्ष 1971 तथा 1984 के मध्य यह वृद्धि 27 प्रतिशत थी किन्तु 1984 तथा 1994 के मध्य यह वृद्धि कम होकर 10.3 प्रतिशत तथा 1994–2000 के मध्य केवल 2.4 प्रतिशत रह गई। अत: उत्तरोत्तर बनने वाली केन्द्रीय सरकारों ने विशेष रूप से देश में कोष/बैंक निदेशित नीतियां लागू होने के पश्चात् गुप चुप ढंग से रोजगारों की हत्याएं की हैं।

9:4 अब आने वाले दिनों में भाजपा के नेतृत्व वाली केन्द्रीय सरकार की ओर से अपने विदेशी आकाओं के निदेशों पर ''रोजगार हत्या योजना'' शुरू की जा रही है। व्यय सुधार आयोग ने 1-1-2000 को कर्मचारियों की जो स्वीकृत संख्या थी, उसमें से भी और 10 प्रतिशत की कटौती करने के लिये अपनी संस्तुति दी है। यह कटौती वर्ष 2004–2005 तक प्रत्येक मंत्रालय/विभाग में लागू की जायेगी।

9:6 ई आर सी अध्ययन द्वारा सुझाई गई खेल की योजना यह है कि ''सम्बन्धित मंत्रालय/विभाग/संगठन को अपनी गतिविधि/कार्य को समाप्त करने के लिये अधिक से अधिक एक महीने का समय दिया जाए। सभी अतिरिक्त व्यक्तियों जिन्होंने पहले तीन महीनों की अवधि में स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति का विकल्प नहीं चुना था और जिन्हें एक वर्ष की अवधि के भीतर पुनर्नियुक्त भी नहीं किया गया है, को वर्तमान सेवा नियमों के अनतर्गत उसी अवधि के अत में सेवा से मुक्त कर दिया जाएगा।''

9:7 इस संदर्भ में एक और गम्भीर घटना को रेखांकित किया जाना चाहिए। राज्य सरकारों के कर्मचारियों पर आने वाले दिनों में कर्मचारियों संख्या कम करने सम्बन्धी योजना की गाज़ व्यापक स्तर पर गिराई जा रही है। अपने राज्यों को विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिये मनभावन लक्ष्य बना देने के लिये व्याकुल राज्य सरकारें अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों के ऋण जाल में फंस चुकी है; उन्होंने अपने-अपने राज्यों में सरकारी कर्मचारियों की संख्या में व्यापक स्तर पर कमी लाने के कदमों की घोषणा कर दी है।

9:8 इस सम्बन्ध में ज्वलंत उदाहरण आंध्र प्रदेश की चन्द्रबाबू नायडू सरकार है। विश्व बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थानों के साथ सम्पन्न समझौते के अन्तर्गत कठोर एवं क्षतिकर शर्तें मान कर नायडू सरकार ''नवम पंच वर्षीय योजना की अवधि में 1 प्रतिशत को कम करने के लिये कदम उठा रही है...ये कदम श्रम शक्ति का आकार

कम करने की विभिन्न विधियां अपना कर...प्राकृतिक कमी लाकर, रिक्त स्थानों को समाप्त करके...स्वैच्छिक विदाई योजनाओं...सम्भावित मुक्ति अपना कर उठाए जाएंगे, समयबद्ध रोजगार कटौती लक्ष्य को पाने के लिये आवश्यक ऐसी ही अन्य विधियां अपनाई जाएंगी।''

10. संक्षेप में

10:1 साम्राज्यवादी भूमण्डलीयकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण के हमलों के दुष्परिणामस्वरूप बेरोजगारी की समस्या अचम्भित कर देने वाली ऊंचाईयों को छूने लगी है, तथ्यों तथा आंकड़ों ने इसे अंतिम रूप से प्रमाणित कर दिया है और यह बीमारी पुरानी हो गई है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा भूमण्डलीय वित्तीय पूंजी ने भारत जैसे विकासशील देशों की अर्थ व्यवस्थाओं पर अपने लौहपाश को और कड़ा बना दिया है और उन्होंने तृतीय विश्व की अर्थव्यवस्थाओं के औद्योगिक आधार को समाप्त करके, उन्हें अपने बंधुआ बाजारों के रूप में परिवर्तित कर दिया है। इस प्रकार की विचलित कर देने वाली घटनाएं ही वही कारक हैं जो तीव्र वि-औद्योगीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से बेरोजगारी की दु:खदायी समस्या को गम्भीर रूप बिगाड़ने में अपना प्रत्यक्ष योगदान दे रही हैं। अत: यह विषय गम्भीर राष्ट्रीय चिन्ता का विषय बन चुका है।

10:2 बेरोजगारी की समस्या ने श्रमिक आंदोलन के लिये एक गम्भीर चुनौती खड़ी कर दी है। औद्योगिक बीमारी, कामबंदी तथा श्रमिकों की छंटनी इत्यादि श्रमिक संघों की सदस्य संख्या में कमी लाने में अपना योगदान दे रही है; यह एक तथ्य है। सी आइ टी यू का अपना अनुभव यह रहा है कि यद्यपि पिछले महाधिवेशन के पश्चात् हमारी कुल संख्या में समग्र रूप में वृद्धि हुई है तथापि हमारी कुल सदस्य संख्या कहीं अधिक होती यदि उद्योगों में ऊपर बताए अनुसार भारी स्तर पर रोजगार क्षतियां नहीं होतीं। इसलिये रोजगार क्षति बड़े पैमाने पर श्रमिक आंदोलन को प्रभावित कर रही है; यह बात स्वत: सिद्ध है।

10:3 बेरोजगारी की समस्या के सामाजिक आयामों की ओर संकेत करते हुए योजना आयोग के एक पूर्व सदस्य ने कहा था, ''बहिष्करण (श्रमिकों का उत्पादन की गतिविधियों से) से वे विमुख (समाज के प्रति) हो जाएंगे और उनकी विमुखता के दुष्परिणाम निकलेंगे जो सामाजिक ढांचे को बनाए रखने के प्रति शत्रुतापूर्ण होंगे। 21वीं शताब्दी में बेरोजगारी आर्थिक समस्या कम किन्तु सामाजिक

समस्या अधिक होगी। उभर रही चुनौतियों का सामना करने के लिये हमारे समाज में बेरोजगारी की समस्या की ओर बहुत ध्यान देने की नितांत आवश्यकता है।'' आइ एल ओ के महासचिव ने इस विषय को इस प्रकार प्रस्तुत किया है : ''भूमण्डलीय रोजगार की स्थिति शोचनीय है और यह दिन प्रतिदिन और अधिक शोचनीय बनती चली जा रही है। बेरोजगारी तथा अर्द्ध रोजगारी के व्याप्त अटल उच्च स्तरों के फलस्वरूप युवा तथा वृद्ध, कम कुशल, आशक्त तथा जातिगत अल्पसंख्यक समूहों के सामाजिक बहिष्करण की स्थिति उत्पन्न हो गई है—इसके साथ ही सभी श्रेणियों में महिलाओं के विरुद्ध बहुत ही मजबूत पूर्वाग्रह (पक्षपात) भी देखने को मिलते हैं।''

10:5 जब एक श्रमिक को रोजगार से निकाल बाहर कर दिया जाता है तब वह आर्थिक तंगियां एवे परेशानियां तो झेलता ही है किन्तु उसके साथ ही उसे गम्भीर मानसिक आघात की स्थिति में से गुजरना होता है, स्वयं अपने ही परिवार में उसे अपमानजनक स्थितियां झेलनी पड़ती हैं और वह सामाजिक दृष्टि से अकेला पड़ जाता है। जब किसी व्यक्ति का रोजगार उससे छीन लिया जाता है तब वह केवल मिलने वाले अपने वेतन से वंचित नहीं होता अपितु वह भीतर से डगमगा जाता है, उसके मन की शांति चली जाती है और घर परिवार में उसकी वह प्रतिष्ठा नहीं रहती जो रोजगार पर रहने के समय थी। परिवार के मोर्चे का चित्र भी ''उलटी दिशा में'' चलने के कारण ''विस्फोटक स्थिति'' वाला हो जाता है एवं सम्पर्क अत्यंत सिकुड़ जाते हैं। इसका अंतिम परिणाम पारिवारिक इकाई के विघटन के रूप में निकलता है।''

11. श्रमिक आंदोलन की पहल कदमियां

11:1 बेरोजगारी की समस्या नये आयामों के जुड़ जाने के साथ और जटिल एवं गम्भीर हो गई है। यह केवल युवाओं और छात्रों की समस्या नहीं रही जैसा कि एस टी आर युग का प्रादुर्भाव होने से पूर्व और वर्तमान चरण के पूंजीवादी अर्थ संकट के और तीव्रतर होने तथा साम्राज्यवादी भूमण्डलीयकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण के शुरू हो जाने से पूर्व इस समस्या को प्रायः देखा जाता था। वर्तमान में कामबंदी, तालाबंदी, ले आफ, पुनर्गठन, विलीनीकरण एवं अधिग्रहण, औद्योगिक इकाईयों एवं सरकारी विभागों में श्रम शक्ति का आकार कम किये जाने इत्यादि के चलते लाखों लाख लोग रोजगारों से निकाल बाहर किये जा रहे हैं और वे व्यापक स्तर पर पहले से बढ़ फूल रही बेरोजगारों की सेना की पंक्तियों को और अधिक लम्बा

बनाने में अपना योगदान दे रहे हैं।

11.2 बेरोजगारी की समस्या को एक प्राथमिक कार्य के रूप में लेना श्रमिक आंदोलन के लिये अत्यंत अनिवार्य बन गया है। वर्षों पूर्व कामरेड बी टी आर ने लिखा था, ''सार्वजनिक क्षेत्र के विखण्डन तथा अंधाधुंध निजीकरण तथा भारतीय बाजार में अनुप्रवेश के लिये बहुराष्ट्रीयों को प्रोत्साहित करने की नीति ने रोजगार की स्थिति के लिए गहरा खतरा उत्पन्न कर दिया है। इसने श्रमिक आंदोलन को भी चुनौती दे डाली है। यदि श्रमिक आंदोलन पहले से काम पर लगे श्रमिकों के रोजगार को बचाना चाहता है तो उसे यह चुनौती स्वीकार करनी ही होगी।'' जब बी टी बार ने उपरोक्त विचारों को लेखनीबद्ध किया था उसके पश्चात् इस मोर्चे की वर्तमान स्थिति अतुलनीय सीमा तक भयानक हो चुकी है। केन्द्र में सत्तासीन भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार ने ''दूसरी पीढ़ी के आर्थिक सुधारों के अपने कार्यक्रम के अन्तर्गत ''रोजगारविहीन प्रगति'' की खतरनाक खेल के अभिनेताओं—विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी के समक्ष पूर्णतया समर्पण कर दिया है। इसलिये देश में बेरोजगारी की स्थिति जो पहले ही गंभीर प्रकृति की बन चुकी है, का आने वाले दिनों में और खराब हो जाना अनिवार्य है। इस प्रकार की स्थिति में श्रमिक आंदोलन को बेरोजगारी की वृद्धि रूपी कैंसर का प्रतिकार करने के उद्देश्य से पूर्ण सत्य निष्ठा के साथ निरंतर चलने वाले जनवादी आंदोलन को विकसित करने के लिए उपयुक्त पहलकदमी करनी होगी।''

11.3 श्रमिक संघों द्वारा इस प्रकार की पहलकदमी करने की अत्यावश्यकता पर कामरेड बी टी आर ने कहा था, ''श्रमिक संघों को चाहिए कि वे बेरोजगारी की वृद्धि को रोकने हेतु सरकार पर दबाव डालने...सरकार की आर्थिक नीतियों में मूलभूत बदलाव लाने और बेरोजगारी रोकने के लिए कदम उठाने के लिए सरकार को विवश करने के संघर्ष की पुरोधा बने और इसके लिये रोजगार प्राप्त तथा गैर रोजगार प्राप्त श्रमिकों के संयुक्त सम्मेलनों का आयोजन करने हेतु पहलकदमी करें।''''काम के अधिकार'' को मौलिक अधिकार के रूप में संविधान में सम्मिलित करने की मांग की सार्थकता एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए कामरेड बी टी आर ने कहा था, '''काम का अधिकार' वास्तव में सभी जनवादी अधिकारों का आधार है; इसके बिना अनेकानेक जनवादी अधिकार मात्र औपचारिक एवं शृंगारिक अधिकार बन कर रह जाएंगे।''

11:4 'काम का अधिकार' विषय पर 2-3 अप्रैल 1990 को दुर्गापुर में अखिल

भारतीय ट्रेड यूनियन सम्मेलन का आयोजन किया गया था। यह हमारे द्वारा ठीक दिशा में की गई एक सार्थक पहलकदमी थी। दुर्गापुर सम्मेलन की सहमति यह थी, ''जनता की सभी श्रेणियों, शहरों एवं गांवों के रोजगार पर लगे तथा बेरोजगार श्रमिकों और उनके साथ-साथ छात्रों, युवाओं एवं महिलाओं की ओर से एक सांझा अभियान चलाया जाना चाहिए। श्रमिक वर्ग की संगठित शक्ति का प्रतिनिधित्व करने वाले श्रमिक संघों का यह भी काम होना चाहिए कि वे बेरोजगार श्रमिकों, ग्रामीण जनता, युवाओं तथा महिलाओं के अभियान को संगठित करने में उनका नेतृत्व करें।'' उस घोषणा पत्र में से एक बार उद्धरण देना उपयोगी होगा, ''श्रमिक आंदोलन अब और अधिक समय तक केवल उन्हीं लोगों के प्रतिनिधि के रूप में बना नहीं रह सकता जो स्थायी रोजगारों पर लगे हुए हैं। ट्रेड यूनियन आंदोलन के संकीर्ण होने के कारण भारत के श्रमिक आंदोलन को सर्वाधिक क्षति हुई है।''

11:5 इस समय जबकि बेरोजगारी की समस्या सामाजिक विस्फोट की स्थिति तक जा पहुंची हो और हमारे देश में समाज की सभी प्रमुख श्रेणियां—रोजगार पर लगे लोग तथा बेरोजगार, शहरी तथा ग्रामीण जनसंख्या, महिलाएं तथा पुरुष, श्रमिक वर्ग, किसान, छात्र तथा युवा इसके भंवर में फंस चुकी हो—तब श्रमिक वर्ग का ऐतिहासिक दायित्व बन जाता है कि वह ''रोजगारविहीन विकास'' की कोष/बैंक द्वारा प्रस्तावित नीति के विरुद्ध एक संयुक्त राष्ट्रव्यापी आंदोलन चलाने के लिये पूरी गम्भीरता के साथ पहलकदमी करे। इस प्रकार की पहलकदमी श्रमिक वर्ग तथा सामान्य जनवादी आंदोलन के पारस्परिक मूल सम्बन्धों को और सुदृढ़ बनाएगी। इस प्रकार की पहलकदमी संयोगवश श्रमिक वर्ग के विरुद्ध प्रचारित अर्थवाद के आरोपों का भी प्रभावशाली ढंग से खण्डन कर सकेगी।

11:6 सी आइ टी यू के दसवें महाधिवेशन के एक कमिशन में ''बेरोजगारी के बढ़ते आयाम'' विषय पर बहस रखी गई। हम आशा करते हैं कि इस कमिशन में इस अत्यंत महत्वपूर्ण विषय पर विस्तृत चर्चा की जाएगी। बहस की प्रक्रिया में जिन मूल बिंदुओं की पहचान किये जाने की आवश्यकता है, वे इस प्रकार होंगे : हमारे संगठन के विभिन्न स्तरों अर्थात् इकाई, जिला, अंचल (जोन), राज्य, राष्ट्र के स्तर पर उठाए जाने वाले व्यावहारिक कदम; अभियानों के विभिन्न चरण; हमारी स्वतंत्र पहलकदमियों का स्वरूप एवं सम्भावनाएं और इन सब के पश्चात् वर्गीय एवं जन संगठनों की संयुक्त पहलकमियों को कार्यरूप देना। एकता अभियान शुरू किया जा सकता है जिसका उद्देश्य सभी प्रमुख ट्रेड यूनियन केन्द्रों को उसमें सम्मिलित करना हो और यह अभियान अन्य जन संगठनों को संयुक्त आंदोलन में खींच लाने वाले

एक उत्प्रेरक एजेंट के रूप में काम करे। सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता तृण मूल स्तर पर इस प्रश्न पर आंदोलन तथा व्यापक प्रचार अभियान चलाना है; इसके फलस्वरूप संयुक्त कार्रवाई जिसका उद्देश्य इसे जनता के व्यापक राष्ट्रव्यापी आंदोलन के रूप में परिणित करना हो, के लिये अनुकूल स्थितियां उत्पन्न होंगी।

11:7 श्रमिक आंदोलन को यह बात समझ लेनी चाहिए कि जनता के उस वर्ग को प्रमुख रूप से सीधे प्रभावित कर सकने वाला यही एकमात्र ऐसा विषय है। इसकी जबरदस्त क्षमता देश में राष्ट्रीय घटनाओं के चक्र को अत्यंत प्रभावित कर सकती है। यही नहीं, यह विषय जीवन के सभी पक्षों के लोगों की विशाल बहुसंख्या पर अभूतपूर्व उत्तेजक प्रभाव डाल सकता है। इसलिये, हमें यह बात अवश्यमेव समझ लेनी चाहिए कि बेरोजगारी का प्रश्न प्रगतिशील, जनवादी तथ दलित एवं उत्पीड़न का शिकार जनता की सभी श्रेणियों को एक ही स्थान पर एकजुट करने वाला केन्द्रीय बिंदु बन सकता है। इसके साथ ही साथ क्योंकि इस समस्या की जड़ पूंजीवाद की धरती में गड़ी है और साम्राज्यवादी भूमण्डलीयकरण का वर्तमान चरण इस समस्या को बद से बदतर बनाने वाला एक प्रमुख कारण है इसलिए इस प्रश्न पर व्यापक एवं जबदस्त जन कार्रवाई किये जाने की आवश्यकता है जिसमें श्रमिक वर्ग की पहलकदमी निरंतर बनी रहेगी; इस बर्बर एवं निरंकुश सामाजिक बुराई प्रतिकार करेगी और अन्ततोगत्वा स्वयं पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष को सुदृढ़ बनाएगी। इस सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र के तत्कालीन प्रमुख महासचिव बुतरस घाली को उद्धृत करना उपयुक्त होगा : ''यदि आप बेरोजगारी, सामाजिक ढांचे के विखण्डन तथा भूमण्डलीय दरिद्रता जैसी समस्याओं का समाधान निकाल नहीं सकते तब आप विश्व व्यवस्था की अत्यंत गम्भीर अस्थिरता और नयी क्रांतियों को होते देखेंगे।''

आंदोलन और अभियान चलाने के लिए कार्यरत है। कई राज्यों में सी आइ टी यू राज्य समितियों के अंतर्गत कामकाजी महिलाओं की समन्वय समितियों का गठन किया जा चुका है। इन समितियों ने अपनी-अपनी क्षमताओं के अनुसार काम भी किया है। सी आइ टी यू के निर्णय के अनुसार जहां कामकाजी महिलाओं की तादाद सदस्यता में अच्छी खासी है वहां यूनियनों में महिला उपमितियों का गठन किया जाना चाहिये। यद्यपि ये समितियां संख्या में कम हैं, सी आइ टी यू के हर फोरम पर, हर स्तर पर कामकाजी महिलाओं को नेतृत्वकारी भूमिकाओं में लाने, उनका विकास करने की कोशिश की जा रही है।

कामकाजी महिलाओं की अखिल भारतीय समन्वय समिति की बैठकों, सम्मेलनों, सी आइ टी यू की जनरल काउंसिल की बैठकों और सी आइ टी यू के अखिल भारतीय सम्मेलनों के लगातार कामकाजी महिलाओं के बीच किए जा रहे हमारे काम की पड़ताल होती रहती है। भुवनेश्वर में 1993 में हुई सी आइ टी यू की वर्किंग कमेटी की बैठक में सी आइ टी यू की सांगठनिक रिपोर्ट में आत्मालोचनात्मक ढंग से कामकाजी महिलाओं में सी आइ टी यू के कार्य की समीक्षा की गई थी और इस क्षेत्र में प्राथमिकताओं को पुनर्पारिभाषित करना तय किया गया था। सी आइ टी यू की हर बैठक में भुवनेश्वर प्रस्ताव के आधार पर लगातार समीक्षायें होती हैं और इसके क्रियान्वयन की योजना बनाई जाती है।

सितंबर 2000 में सम्पन्न कामकाजी महिलाओं के छठवें अखिल भारतीय सम्मेलन में, जो सी आइ टी यू के इस दसवें सम्मेलन के पूर्व अलग से आयोजित किया गया था, संगठन की एक तस्वीर पेश की गयी थी। इस रिपोर्ट में कहा गया था-

''कामकाजी महिला समन्वय समिति के गठन के दो दशकों के बाद भी यद्यपि कामगार महिलाओं के मुद्दों पर मामूली ध्यान दिया गया है परंतु आज भी अधिकतर सी आइ टी यू कमेटियां कामकाजी महिलाओं को संगठित करने के इस महत्वपूर्ण मुद्दे को समझ नहीं पाई हैं।''

रिपोर्ट कहती है कि -

''महिलाओं की क्षमताओं को सामंती दृष्टिकोण के साथ कम करके आंकना और उन्हें आगे बढ़ाने में कोई मदद नहीं करना यह आज भी अलग-अलग प्रकार से अलग-अलग स्तर पर जारी है। महिलायें इस व्यवहार को पहचानती हैं और इसीलिए यूनियन में विभिन्न जिम्मेदारियों को सम्हालने से कतराती हैं।''

कामकाजी महिलाएं: एक वर्गीय दृष्टिकोण

9-10 अप्रैल 1979 को मद्रास में सी आइ टी यू द्वारा आयोजित कामकाजी महिलाओं के एक राष्ट्रीय कन्वेंशन में नोट किया गया था:

''समाज का आधा हिस्सा महिलायें हैं और कामकाजी महिलाएं वर्ग संघर्ष की एक महत्वपूर्ण शक्ति हैं। भारतीय ट्रेड यूनियन आंदोलन की यह एक बड़ी कमजोरी है कि ट्रेड यूनियन में - जो वर्ग संघर्ष की पाठशालायें हैं - कामकाजी महिलाओं को संगठित करने में आज भी वह पूरी तरह से कामयाब नहीं हो पाया है। यह कमजोरी योजनाबद्ध और सचेतन प्रयासों से दूर की जानी चाहिए जिससे ट्रेड यूनियन आंदोलन के आधार का विस्तार हो और इसे मजबूत भी किया जा सके।''

''हमें भारतीय कामकाजी महिलाओं से भी पिछड़ी हुई मानसिकता से उबर कर हिम्मत के साथ ट्रेड यूनियनों में संगठित होने, स्वयं को शिक्षित करने के लिये अपने भीतर कल्पनाशीलता जगाने और अधिकाधिक पहलकदमियां करने की आग्रह करना चाहिए। कामकाजी महिलाओं को अपने तमाम पूर्वाग्रहों से मुक्ति पाकर ट्रेड यूनियन गतिविधियों में उत्साह से भाग लेना चाहिए और यूनियनों में जिम्मेदारियां और पद ग्रहण करने के लिए तैयार रहना चाहिए।''

अखिल भारतीय कन्वेंशन में सी आइ टी यू के एक अभिन्न अंग के रूप में कामकाजी महिलाओं की अखिल भारतीय समन्वय समिति का गठन किया गया। कन्वेंशन में भारत की कामकाजी महिलाओं के लिए एक राष्ट्रीय मांग पत्र भी स्वीकार किया गया।

दो दशकों के अनुभव

पिछले दो दशकों से कामकाजी महिलाओं की अखिल भारतीय समन्वय समिति सी आइ टी यू के दाहिने हाथ की भांति कामकाजी महिलाओं के बीच

यह कठोरता क्यों ?

''हमारे नेतृत्वकारी साथियों, यूनियनों और विभिन्न कमेटियों में आज भी यह अति कठोरता क्यों विद्यमान है ?'' (जैसा कि भुबनेश्वर दस्तावेज में बताया गया था)। इस मामले में ''अपनी उपेक्षा की आत्मालोचना को रस्मी तौर पर निभाने'' और कामकाजी महिलाओं के प्रति अपने रुख में गंभीर सुधार लाये बिना इसी आलोचना के बाद हम रुक क्यों गये जैसा कि उसी दस्तावेज में इंगित किया गया है।

हमारी सामाजिक संरचना में महिलाओं के अधिकारों की उपेक्षा की जाती है या फिर उन्हें अक्सर छोटा करके देखा जाता है। महिलाओं का पुरुषों के साथ जीवन के सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक क्षेत्रों में कदम मिलाकर चलना प्रासंगिक मुद्दा ही नहीं माना जाता। वर्तमान सामाजिक आर्थिक वातावरण में औरत के साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से होने वाले भेदभाव के परिमाण और महत्ता को गंभीर अन्याय की तरह नहीं लिया जाता। बल्कि यह व्यापक धारणा है कि महिलायें केवल पुरुष की अधीनस्थ भूमिका निबाहने के लिए ही बनी हैं। दुर्भाग्य से महिलायें स्वयं भी इसी भावना का शिकार हैं और जिंदगी में आने वाली हर अपमानजनक घटना को स्वाभाविक और अपरिवर्तनीय मानकर सहन कर लेती हैं। इसी प्रकार के विपरीत विचार, धारणायें, जीवन मूल्य और व्यवहार, जो महिलाओं के व्यक्तित्व के विकास को रोकते हैं जो अंततः समाज में पुरूष व महिला दोनों ही के जीवन पर एक गहरा और व्यापक असर छोड़ते हैं। यहां तक कि इन्हें तोड़ने व झकझोरने तथा अब तक के पुरुष प्रभुत्व वाले क्षेत्रों में प्रवेश के लिए महिलाओं द्वारा किए गए कुछ कमजोर प्रयासों को भी तीव्र विरोध का सामना करना पड़ता है।

हम सी आइ टी यू के प्रतिनिधि के नाते भी समाज में व्याप्त इस लक्षण से बाहर निकलने में कामयाब नहीं हो पाये हैं। कामकाजी महिलाओं के क्षेत्र में विकास कर पाने में हमारे बुरी तरह असफल रहने का यही एक बुनियादी कारण भी है।

कार्यभार, वर्ग संघर्ष का हिस्सा

सर्वप्रथम, हमें यह याद रखना है कि कामकाजी महिलाओं को संगठित करने का काम वर्ग संघर्ष के प्रति हमारी प्रतिबद्धता का ही एक हिस्सा है। यह प्रतिबद्धता महिलाओं के प्रति ''सहानुभूति'' की किसी झूठी धारणा के आधार पर पैदा नहीं हुई है कि महिलायें समाज का एक ''कमजोर'' तबका हैं। सामान्यतः

महिला समुदाय को ''कमजोर'' तबके के रूप में चित्रित किया जाता है, क्या ऐसा नहीं है ? यह उनकी यंत्रणाओं के निवारण के लिए उद्धारकर्ता के समान दी गई सहायता का प्रश्न नहीं है न ही उनकी ओर हमारा सहायता के लिए बढ़ा हुआ हाथ किसी योद्धा का है क्योंकि वे सबसे अधिक दमित व सबसे वंचित तबके से हैं।

हमें याद रखना है कि कामकाजी महिलाओं के प्रति हमारी जिम्मेदारी की नींव खुद सी आइ टी यू के संविधान में निहित है। हमारे लक्ष्यों व उद्देश्यों में सर्वप्रथम लिखा गया है:-

''सी आइ टी यू का विश्वास है कि मजदूर वर्ग के शोषण का अंत तभी हो सकता है जब उत्पादन के सभी साधनों, वितरण और विनिमय पर पूरे समाज का अधिकार हो और एक समाजवादी व्यवस्था कायम हो। समाजवादी समाज की स्थापना के इस सिद्धांत के प्रति दृढ़तापूर्वक बंधे रहकर सी आइ टी यू समाज को सभी तरह के शोषण से मुक्ति दिलाने के पक्ष में हैं।''

समाज की सभी तरह के शोषण से मुक्ति का यह लक्ष्य तब तक पूरा ही नहीं हो सकता जब तक महिलाओं की मुक्ति नहीं हो जाती, जो समाज का आधा हिस्सा हैं।

सी आइ टी यू का संविधान विशेष रूप से शपथ लेता है कि -

''सी आइ टी यू जाति पर आधारित पक्षपात जैसे अस्पृश्यता, लिंग एवं धर्म के आधार पर और रोजगार , वेतन तथा पदोन्नति में पक्षपात की समाप्ति के लिये संघर्ष करता है।''

समाज व मजदूर वर्ग के पूंजीवादी व्यवस्था में होने वाले इस शोषण को समाप्त करने के लिए समाज के क्रांतिकारी ढंग से परिवर्तन के एतिहासिक दायित्व के प्रति हमें मजदूर वर्ग को चेतना संपन्न बनाना पड़ेगा। इसके लिए आवश्यक है कि इस पूंजीवाद के कारण सबसे पीड़ित वर्ग में हमें राजनैतिक चेतना लाने का काम करना होगा।

लेकिन हम जनता में क्रांतिकारी राजनैतिक चेतना तब तक नहीं ला सकते जब तक हम महिलाओं को भी इस संघर्ष में नहीं जोड़ते। क्योंकि महिलायें इस पूंजीवादी व्यवस्था के दोहरे दमन का शिकार होती हैं। कामकाजी व कृषक महिलायें पूंजी के दमन की शिकार होती हैं, परंतु इस सबके ऊपर, यहां तक कि दुनियां के सबसे अधिक स्वतंत्र व लोकतांत्रिक बुर्जुआ गणतंत्रों में भी वे प्रथम तो पुरुष के बराबर अधिकार नहीं दिए जाते और दूसरे यह सबसे मुख्य चीज है कि वे ''घरेलू बंधन'' में रहती हैं और घरेलू नौकर होकर रह जाती है, क्योंकि वे रसोई

घर और व्यक्तिगत परिवार में कोल्हू के बैल की तरह सबसे कुत्सित व कमरतोड़ और निरर्थक मेहनत के अति बोझ से दबी होती हैं।

लेनिन ने जोर देकर कहा था : ''महिलाओं की भागीदारी के बगैर कोई भी वास्तविक जनांदोलन नहीं हो सकता।''

इसलिए सी आइ टी यू के हर स्तर के कार्यकर्ताओं के लिए यह अच्छी तरह से समझना जरूरी है कि कामकाजी महिलाओं को संगठित करना सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन के मजदूर वर्ग को मिले ऐतिहासिक कार्यभार का हिस्सा है - और न कि मानवतावादी या भला मसीहाई कार्य।

अपने वर्ग की महिलाओं से संवाद

महिलायें सामाजिक कार्यवाही में उनके अपने संगठनों के माध्यम से सक्रिय होती हैं। उदाहरण के लिए अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति। लेकिन सी आइ टी यू में जब हम कामकाजी महिलाओं के मुद्दों पर विचार करते हैं तो हमारा उद्देश्य अलग होता है। कामकाजी महिला समन्वय समिति को जनवादी महिला समिति से एकमेक करने की एक सामान्य प्रवृत्ति पाई जाती है। कई बार सी आइ टी यू समितियां कामकाजी महिलाओं के मुद्दों को , एडवा के साथियों पर या कामकाजी महिला कार्यकर्ताओं के ऊपर एडवा के साथ मिलकर, सुलझाने का काम छोड़ देती हैं। कामकाजी महिला मोर्चे पर हमारे साथी भी इन मुद्दों को आम महिला आंदोलन के मुद्दे मानते हैं, जैसे कि सी आइ टी यू की कोई भूमिका न हो या बहुत मामूली भूमिका हो।

यद्यपि ए आई डी डब्लू ए और ए आई सी सी डब्लू डब्लू के कार्यक्षेत्र एवं कई मुद्दे समान हो सकते हैं लेकिन ए आई डी डब्लू ए जहां महिलाओं का एक गैर वर्गीय दृष्टिकोण का संगठन है वहीं ए आई सी सी डब्लू डब्लू हमारे वर्ग की महिलाओं संगठन है। ए आई डी डब्लू ए व अन्य महिला संगठन जो मुद्दे लेते हैं वे हैं-

- ❒ बाल विवाह
- ❒ सती
- ❒ दहेज उत्पीड़न
- ❒ बहु को जीवित जला देना

  अर्थात् दहेज हत्या

❒ महिलाओं के विरुद्ध अत्याचार

❒ महिला सशक्तिकरण के सामान्य मुद्दे

❒ महिलाओं से सम्बन्धित समाज सुधारोन्मुखी मुद्दे

❒ महिलाओं को मात्र भोग विलास की वस्तु बना देना

इसका अर्थ यह नहीं कि एडवा जैसे महिलाओं के आम संगठन महिलाओं के वेतनमान, नौकरियों, रोजगार में भेदभाव जैसी पूंजीवादी व्यवस्था से उपजी समस्याओं के खिलाफ आंदोलन नहीं कर सकते।

कामकाजी महिला समितियां भी महिलाओं की समस्याओं के खिलाफ आम महिला संगठनों द्वारा किए जाने वाले आंदोलनों में भाग ले सकती हैं। बल्कि उन्हें इन आंदोलनों में हिस्सेदारी करनी ही चाहिए। सी आइ टी यू को भी ऐसे मुद्दों पर हस्तक्षेप व समर्थन करना चाहिए।

परंतु सी आइ टी यू, कामकाजी महिला समितियों के माध्यम से उन महिलाओं को, जो मजदूर वर्ग की हिस्सा हैं, को लामबंद करके उन्हें वर्ग संघर्ष की मुख्यधारा में लाने का प्रयास करता है और उनकी फौरी मांगों के लिए चलाये जाने वाले प्रारंभिक संघर्षों से लेकर सामाजिक परिवर्तन तक के संघर्ष के लिए उन्हें संगठित करता है।

इसमें सी आइ टी यू व कामकाजी महिलायें दूसरे जनतांत्रिक महिला संगठनों का सहयोग लेने का निश्चिय रूप से प्रयास करेंगी। इसीलिए का0 बी टी आर ने 1979 में कामगार महिलाओं के राष्ट्रीय कन्वेंशन के दस्तावेज के आमुख में लिखा था:-

''कामकाजी महिलाओं-कारखाना श्रमिकों, शिक्षिकाओं, कर्मचारियों इत्यादि - की मांगों के लिए किया जाने वाला संघर्ष मात्र ट्रेड यूनियनों की चिंता का विषय नहीं होना चाहिए। सभी महिला संगठनों को ट्रेड यूनियन आंदोलन की इस संघर्ष के दौरान मदद करनी चाहिए।''

❒ कामकाजी महिलाओं से सम्बन्धित मांगें एवं मुद्दे इस प्रकार हैं:

❒ समान काम के लिये समान पारिश्रमिक

❒ प्रसूति लाभ

❒ रात्रि पाली में उनसे काम नहीं लेना

❒ शिशु पलनागृह/होस्टल का प्रावधान

❒ कामकाजी स्थलों में यौन उत्पीड़न की रोकथाम इत्यादि

ये वे मुद्दे हैं जिन पर प्राथमिक रूप से ट्रेड यूनियन ही संघर्ष करेगी तथा अन्य महिला संगठन उनकी मदद करेंगे।

अधिक स्पष्ट रूप से कहें तो महिला संगठन महिला के बर्जुआ परिवार में होने वाले उत्पीड़न यहां तक कि पारिवारिक संपत्ति के विवादों में उसके वंचित होने के मुद्दे को उठा सकता है। लेकिन कामगार महिला समितियों को प्राथमिक रूप से कामगार महिलाओं के वर्गीय शोषण के मुद्दे उठाना चाहिए। हमें हमेशा याद रखना होगा कि जब हम कामगार महिलाओं के मुद्दों पर विचार करते हैं तब हम खुद अपने वर्ग के मुद्दों पर विचार कर रहे होते हैं।

उदाहरणार्थ महिलाओं पर अत्याचार वे मुद्दे हैं जिन्हें उठाने की आम महिला संगठनों की प्राथमिक जिम्मेदरी होती है और ट्रेड यूनियनें उन्हें अपना समर्थन देती हैं। (लेकिन यदि महिला खेत मजदूरों पर जमींदारों द्वारा अत्याचार किए जाते हैं तब प्राथमिक जिम्मेदारी ट्रेड यूनियन की होती है क्योंकि यह उत्पीड़न एक वर्गीय उत्पीड़न है। कार्य स्थल पर लैंगिक उत्पीड़न की किसी भी घटना को ट्रेड यूनियनों को तुरंत उठाना चाहिए तथा आम महिला संगठन अपना समर्थन दे सकते हैं।) कामकाजी स्थलों में यौन उत्पीड़न की घटनाएं होते ही श्रमिक संघों को इन पर कार्रवाई करनी चाहिए। वहां महिलाओं के सामान्य संगठन उनका समर्थन कर सकते हैं।

वास्तविक अर्थों में मुक्ति

विस्तार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि हमें यह भी ज्ञात हो कि ''नारी मुक्ति'' का ''वर्गीय'' व ''गैर वर्गीय'' दृष्टि से अर्थ क्या होता है।

''नारी मुक्ति'', ''नारी समानता'', ''महिलाओं के लिए समान अवसर और समान अधिकार'' इत्यादि वे नारे हैं जो प्राय: सभी महिला संगठन लगाते रहते हैं। महिलाओं के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले सम्मेलनों में जोर दिया गया है कि महिलाओं के अधिकार इंसानी अधिकार हैं। दुनिया भर के देशों में महिला समूहों ने संघर्ष छेड़ा है। कुछ कट्टरपंथी देशों – जैसे अफगानिस्तान के तालिबानों को छोड़कर प्राय: सभी देशों में राजनीतिक परिदृश्य के सभी दलों ने कम से कम जुबानी रूप में तो समान अधिकारों के लिए नारी की छटपटाहट को समर्थन दिया है।

लेकिन सी आइ टी यू की दृढ़ मान्यता है कि पूरे समाज की शोषण से मुक्ति के बगैर महिलाओं की मुक्ति कतई असंभव है। पूंजीवादी व्यवस्था में महिलाओं की

वास्तविक मुक्ति संभव नहीं है। लेनिन ने इसे काफी सरस एवं जोरदार तरीके से निम्न शब्दों में व्याख्यायित किया था :-

''हमें उत्पादन के संबंधों पर व्यक्तिगत स्वामित्व और महिलाओं की सामाजिक व मानवीय जीवन स्थिति के बीच गहरे अंर्तसंबंध पर जोर देना चाहिए। इससे महिला मुक्ति के लिए चलाये जाने वाले बुर्जआ आंदोलनों के खिलाफ अमिट विभाजन रेखा खिंच जायेगी। इससे हमें महिलाओं के मुद्दों को सामाजिक व मजदूर वर्ग के मुद्दों की पृष्ठभूमि में जांचने का आधार मिलेगा और उनकी मुक्ति का सवाल सर्वहारा के वर्ग संघर्ष और क्रांति से जुड़ जायेगा।''

1920 के अंर्तराष्ट्रीय महिला दिवस पर लेनिन ने इसे और विस्तृत किया था। उन्होंने लिखा था कि:

''पूंजीवाद औपचारिक समानता को, आर्थिक एवं परिणामतः सामाजिक बराबरी से जोड़ देता है .... लेकिन इस औपचारिक समानता (कानून के समक्ष समानता, संपन्न और भूखे की, संपत्तिशाली और संपत्तिहीन की समानता) के मामले में भी पूंजीवाद दृढ़ नहीं रह सकता और इस असंगति की एक चौंका देने वाली अभिव्यक्ति स्त्री-पुरूष के मध्य असमानता है।''

एक अन्य संदर्भ में लेनिन ने समानता और स्वतंत्रता के प्रश्न पर गैर वर्गीय रूख के पाखण्ड को उजागर किया था।

''पूंजीवादी लोकतंत्र स्वतंत्रता और समानता का जुबानी वायदा तो करता है लेकिन वास्तविकता में एक भी पूंजीवादी गणराज्य ने, चाहे वह कितना ही विकसित क्यों न हो, मानव नस्ल की आधी आबादी महिलाओं को पुरुष के शोषण और उस पर निर्भरता से ही कानून की दृष्टि में भी पूर्ण समानता नहीं दी है।''

उन्होंने घोषणा कि-

''शोषक और शोषित, उत्पीड़क और उत्पीड़ित दोनों की समानता न होती है और न हो सकती है। जब तक पुरुष के कानूनी विशेषाधिकारों से महिलायें अपंग बनी हुयी हैं, जब तक पूंजी के फंदे से मजदूर स्वतंत्र नहीं होता जब तक कि मेहनती किसान पूंजीपति, जमींदार और व्यापारी की दासता के फंदे से आजाद नही हैं तब तक वास्तविक ''स्वतंत्रता'' न होती है और न हीं हो सकती है।''

देश के मजदूर आंदोलन तथा सी आइ टी यू की सबसे बड़ी महिला नेताओं में से एक का0 विमल रणदिवे ने कामकाजी महिलाओं के राष्ट्रीय सम्मेलन (1979)

के समक्ष प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में समाजवाद के लिए संघर्ष तथा कामकाजी महिलाओं की समस्याओं के अंर्तसंबंध को निम्नलिखित शब्दों में रेखांकित किया था-

''.....कामकाजी महिलाओं को समझ लेना चाहिए कि पूंजीवादी सामंती समाज के अंतर्गत उनकी बुनियादी समस्यायें कभी सुलझने वाली नहीं हैं, और उनके कष्ट कभी खत्म होने वाले नहीं हैं। सिर्फ समाजवाद के तहत ही उनकी समस्याओं का समाधान हो सकता है तथा उन्हें समान अधिकार मिल सकते हैं और वे एक स्वतंत्र तथा खुशहाल जिंदगी जी सकती हैं। और इसीलिए उन्हें पूजीवादी सामंती राज के विरूद्ध तथा देश में समाजवाद की स्थापना के लिए अपने आपको संगठित करना चाहिये।''

सी आइ टी यू ने ठीक इसी संदेश को प्रत्येक महिला श्रमिक तक पहुंचाने के लिए कामकाजी महिला मोर्चे पर कार्यभार हाथ में लिया है। सी आइ टी यू समितियों तथा हर स्तर की कामकाजी महिला समन्वय समितियों का यही बुनियादी परिप्रेक्ष्य होना चाहिए।

नारी असमानता का वर्गीय स्त्रोत

कामकाजी महिला मोर्चे पर हमारे विकास की बाधा यह है कि हम विभिन्न स्तरों पर सक्रिय ट्रेड यूनियन नेताओं व कार्यकर्ताओं को लैंगिक मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाने, तथा ट्रेड यूनियन कार्य प्रणाली के सभी पहलुओं में समानता की चिंताओं के प्रति समुचित रवैया अपनाने हेतु तैयार करने के सुव्यवस्थित प्रयास नहीं कर सके हैं।

अक्सर ही हमें मजदूरों (महिला व पुरुष दोनों) के बीच से ऐसी धारणाओं का सामना करना पड़ता है जो यह मानती हैं कि महिला अधिकार का प्रश्न पुरुष विरुद्ध महिला का प्रश्न है। पुरुष मजदूर मानते हैं कि अपनी समानता के लिए महिलाओं को ही प्रयत्न करने चाहिए। उनके नजरिये से महिला अधिकार का सवाल एक नारी प्रश्न है और इसलिए पुरुषों की चिंता का विषय नहीं है। महिला मजदूर समझती हैं कि उन्हें अपने अधिकारों के लिए संघर्ष समूचे पुरुष समुदाय से लड़कर ही चलाना होगा।

यहां पुरुष और महिला दोनों ही से यह बिंदु छूट जाता है कि, यौन असमानता से लड़ाई मजदूर वर्ग - महिला और पुरुष - दोनों को एक वर्ग के रूप में ही लड़नी होगी।

मगर सच्चाई यह है कि हमारे अधिकतर मजदूरों यहां तक कि जो ट्रेड यूनियन नेतृत्व में भी है, उनकी भी यह समझदारी नहीं है।

ट्रेड यूनियनों में लैंगिक मुद्दों से कैसे निपटा जाये इस हेतु समुचित समझ विकसित करने के लिये यहां, अपने आपको आम तौर से नारी प्रश्न से जुड़े कुछ बुनियादी मुद्दों की याद दिलाना जरूरी हो जाता है।

महिलाओं की गुलामी, ऐतिहासिक रूप से पूंजीवादी निजी संपत्ति संबंधों के विकास की विरासत है। फ्रेडरिक एंगेल्स ने अपनी सुप्रसिद्ध किताब ''परिवार, निजी संपत्ति और राज सत्ता का उदय'' में इस पहलू की विषद रूप से चर्चा की है।

एंगेल्स ने प्रतिपादित किया कि केवल संपत्ति के अधिकारों के विकास और समृद्धि के बढ़ने के साथ ही पुरुषों ने परिवार में महिलाओं की तुलना में ज्यादा महत्वपूर्ण दर्जा हासिल कर लिया। उन्होंने परिवार के मातृ सत्तात्मक से पितृ सत्तात्मक में संक्रमण तथा मातृत्व अधिकार को उखाड़ फेकने की अवस्था को विश्व नारी समुदाय की ऐतिहासिक पराजय निरूपित किया और जोड़ा:-

''पुरुष ने घर में भी लगाम थाम ली। उसे पुरुष की हवस की गुलाम, एक महज बच्चे पैदा करने का औजार बना दिया गया, महिला का दर्जा दिया गया, उसे बंधुआ बना दिया गया। महिलाओं की यह निचले स्तर की स्थिति धीरे धीरे कपटपूर्ण तरीके से अलंकरणों में छिपाई जाती रही, थोड़ा बहुत नर्म ढकाव किया गया मगर किसी भी तरह इसे खत्म नही किया गया।''

एंगेल्स ने बताया है कि किस तरह सिर्फ संपत्ति तथा उत्तराधिकार के अधिकारों के चलते ही महिलाएं परिवार में आर्थिक उत्पीड़न का शिकार बनी और अपनी समानता खो बैठी। उन्होंने तुलनात्मक रूप से बताया किस प्रकार मजदूर और नियोजक नौकरी के अनुबंध के हिसाब से कागज पर तो बराबर है लेकिन ठोस आर्थिक परिस्थितियां मजदूर को इन समान अधिकारों के मामूली दिखावे से भी वंचित होने के लिए मजबूर कर देती हैं। उन्होंने निष्कर्ष दिया कि -

''आधुनिक परिवार महिला की खुली और छिपी घरेलू गुलामी पर टिका हुआ है। आज,अधिकांश मामलों में, पुरुष परिवार के लिए कमाने और रोटी जुगाड़ने वाला है। परिवार में वह बुर्जुआ जी है और उसकी पत्नी सर्वहारा का प्रतिनिधित्व करती है।''

एगेल्स ने बताया कि पूंजीवाद में मजदूर पूंजीपति वर्ग के प्रभुत्व का शिकार बनता है तथा उसे आर्थिक दमन से गुजरना पड़ता है। परिवार में नारी के ऊपर पुरुष

का प्रभुत्व पत्नी को ''पहला घरेलू नौकर'' बना डालता है।

महिलाओं की असमानता - या दासता - तथा पुरुषों का प्रभुत्व सामंती और पूंजीवादी वर्ग की घातक धरोहर है। एक वर्ग चेतन मजदूर को शत्रु वर्ग की इन धारणाओं से अपने आपको मुक्त कराने के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। इसके लिए जरूरी है कि महिला और पुरुष साथियों के बीच ट्रेड यूनियन कार्य प्रणाली में लैंगिक प्रश्नों के प्रति सही समझ विकसित की जाये।

यहां यह सवाल पैदा होता है कि सी आइ टी यू में हम अपने मजदूर वर्ग के नेताओं व कार्यकर्ताओं को महिलाओं की समाज में मौजूदा स्थिति की वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अवगत कराने में किस हद तक सफल हुए हैं। जब तक इकाई स्तर तक के ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं को लक्ष्यबद्ध कर उन्हें सचेत करने की प्रक्रिया शुरू नहीं की जाती तब तक हम कामकाजी महिला मोर्चे पर बने मौजूदा गतिरोध को तोड़ नहीं सकते।

लेनिन ने कहा था-

''यह हमारे लिए बिल्कुल उचित है कि हम महिलाओं को फायदा पहुंचाने वाली मांगे उठायें। हमारी मांगे कमजोर एवं अधिकारहीन महिलाओं द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था में भुगते जा रहे घृणित अपमान और उनकी सिसकती जरूरतों के व्यावहारिक निष्कर्षो से अधिक नहीं हैं। इनके माध्यम से हम यह प्रदर्शित करते हैं कि हम महिलाओं के उत्पीड़न तथा उनकी आवश्यकताओं से अवगत हैं, कि हम पुरुष की विशेषाधिकारी स्थिति से भी वाकिफ हैं, और हम इससे घृणा - हां- घृणा करते हैं तथा कामकाजी महिला, मजदूर की पत्नी, किसान महिला, गरीब आदमी की औरत आदि का जो भी उत्पीड़न या दमन है उसे खत्म करना चाहते हैं।''

इसके लिये पुरुषों के बीच पर्याप्त शैक्षणिक काम की जरूरत है। हमें दास स्वामियों वाले पुराने नजरियों को जड़ से उखाड़ना होगा।

अपने महिला व पुरुष दोनों तरह के कार्यकर्ताओं को सघन सैंद्धातिक एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण दिये बिना हम कामकाजी महिलाओं के बीच वास्तविक काम शुरू ही नहीं कर सकते।

दो मुख्य कमजोरियां

जब भी हम राज्यों, औद्योगिक फैडरेशनों और यूनियनों में काम करने वाले साथियों से पूछते हैं कि वे कामकाजी महिला मोर्चे के कार्यभार को पूरा करने के

लिये मामूली से शुरूआती कदम क्यों नहीं उठा रहे तो आमतौर से प्राय: सभी जगह हमें जबाब मिलता है कि क्या करें ? हमारे पास कोई महिला ही नहीं हैं। उनका आशय होता है कि उनके पास इस काम के लिए कोई उपयुक्त महिला कार्यकर्ता नहीं है।

इससे दो कमजोरियां रेखांकित होती हैं। एक तो यह गलत समझ कि कामकाजी महिलाओं के बीच जो भी काम किया जायेगा वह केवल महिलायें ही करेंगी पुरुष साथी नहीं करेगा। दूसरी कमजोरी महिला कार्यकर्ता को इस कार्य के लायक विकसित एवं प्रशिक्षित करने के प्रति आवश्यक गंभीरता की कमी की है।

कामकाजी महिला मोर्चे पर काम की जरूरत के अत्यावश्यक महत्व का दो दशकों से सी आइ टी यू द्वारा बार बार राग अलापे जाने के बाबजूद ये कमजोरियां जारी हैं। इससे जाहिर होता है कि हमारी राज्य समितियां तथा फैडरेशनें निर्धारित कार्यभारों और उन पर अमल न करने पर होने वाली आलोचनाओं के प्रति सर झुकाकर जो रजामंदी जताती है वह असल में सिर्फ सांकेतिक सहमति होती है। असल व्यवहार में तो यह स्पष्ट असहमति ही होती है।

यहां पुन: लेनिन को उद्धृत करना शिक्षाप्रद होगा। पुरुष साथियों के रवैये के बारे में बोलते हुये उन्होंने कहा था कि:-

''जब कामकाजी महिलाओं का जन आंदोलन विकसित करने का मुद्दा आता है तो उनका रवैया निष्क्रिय या देखो और इंतजार करो का होता है..... वे यह महसूस नहीं करते कि ऐसे आंदोलन को विकसित कर उसका नेतृत्व करना हमारी (समस्त) गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण, हमारे सारे काम का आधे से अधिक हिस्सा है। उनके द्वारा यदा-कदा सोद्देश्य , मजबूत और विविध महिला आंदोलन की जरूरत महसूस करना एक निष्काम जबानी जमा खर्च ज्यादा होता है, कार्यभार को पूरा करने की चिंता कम।

''महिलाओं के बीच प्रचार और आंदोलन तथा उनके क्रांतिकारीकरण व उन्हें जागृत करने के काम को वे दूसरे दर्जे का सिर्फ महिला कम्युनिस्टों का ही काम मानते हैं और अगर काम ठीक तरीके से आगे न बढ़े तो उन्हें ही लताड़ा जाता है। यह गलत है, बुनियादी रूप से गलत है, यह सरासर अलगाववाद है। यह समानता को उलट देना है ..... अंतिम विश्लेषण में यह नारी और उसके योगदान को कम करके आंकना है।''

यह रवैया, जिसकी लेनिन ने इतनी सख्त निंदा की थी, जब हमारे साथियों से

कामकाजी महिलाओं के बारे में सी आइ टी यू के निर्धारित कार्यभारों पर अमल के लिये कहा जाता है तब उनकी जड़ता में अभिव्यक्त होता है।

ऐसे अनुभवों की कोई कमी नहीं है कि जिन राज्यों में सी आइ टी यू कोई बड़ी शक्ति नहीं है वहां भी महिलायें हमारी यूनियनों द्वारा छेड़े गये संघर्षों में अनगिनत जुल्मों का मुकाबला करने में बहादुराना प्रदर्शन करते हुए आगे आई हैं। इन जुझारू महिलाओं को सक्षम संगठनकर्ता और नेता बनाने में हमारी राज्य समितियों द्वारा दिखाई गई लापरवाही अक्षम्य है।

कामकाजी महिलाओं के ट्रेड यूनियन गतिविधियों से जुड़ने में तमाम अड़चनें हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :-

- ❒ उन्हें तिहरा बोझ उठाना पड़ता है,
- ❒ फैक्ट्री / आफिस में काम
- ❒ घर में काम
- ❒ ट्रेड यूनियन में काम
- ❒ उनका शैक्षणिक स्तर काफी नीचा होता है तथा शिक्षा व प्रशिक्षण तक उनकी पहुंच भी काफी कम होती है।
- ❒ वे धार्मिक वर्जनाओं तथा रीति और परंपराओं के द्वारा थोपे गये तमाम निषेधों का शिकार होती हैं।
- ❒ अक्सर उनके परिवारों के सदस्य उन्हें ट्रेड यूनियन कामों में हिस्सेदारी से रोकते हैं।
- ❒ अपने पुरुष सहयोगियों के साथ काम करते हुये वे चरित्र हनन का आसान निशाना होती हैं।
- ❒ स्वाध्याय एवं आत्म विकास के लिए उन्हें बेहद कम अवसर मिलते हैं।

हमारी राज्य समितियों तथा अन्य नेतृत्वकारी समितियों को इन अड़चनों को ध्यान में रखते हुये ऐसे गंभीर प्रयास करने चाहिये जिनसे वे इन पर काबू पा सकें। इसके बाद इस मोर्चे पर लगाने के लिये काबिल कार्यकर्ताओं की कमी नहीं पड़ेगी। विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रमों को कामकाजी महिलाओं की जायज तकलीफों को ध्यान में रखते हुये बनाने की जरूरत है। ऐसा हुआ तो वे भी प्रत्युत्तर देने में कमी नहीं

दिखायेंगी। हाल के वर्षों में अखिल भारतीय कामकाजी महिला समन्वय समिति (ए आई सी सी डब्लू डब्लू) की ओर से सिर्फ कामकाजी महिलाओं के लिये कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये गये थे। इनमें हासिल हुआ अनुभव इस भरोसे की ताईद करता है। लेकिन राज्य / फैडरेशनों के स्तर पर बहुत ही कम ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जा सके। सी आइ टी यू सेंटर जब कभी भी अखिल भारतीय या उद्योग स्तर के प्रशिक्षण कार्यक्रमों हेतु महिलाओं को नामांकित करने के लिये कहता है तब तब ऐसा न करने को उचित ठहराने हेतु महिलाओं को होने वाली तमाम सारी असुविधाएं गिना दी जाती हैं। हालांकि कई मामलों में ऐसा पूरी तरह सही नहीं होता फिर भी यह समझ में आने योग्य है। किंतु यह अच्छी तरह से महसूस नहीं किया जाता कि ठीक इन्हीं तकलीफों को दूर करने के लिये राज्यों / फैडरेशनों द्वारा अलग से महिलाओं के विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम रखना कितना जरूरी है।

कामकाजी महिलाओं को जहां तक संभव हो वहां तक स्वाध्याय एवं आत्म विकास के लिये प्रेरित करना भी जरूरी है। विशेषकर कामकाजी महिला समितियों को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

सी आइ टी यू द्वारा आम ट्रेड यूनियन शिक्षा के लिये तैयार पाठ्यक्रम में महिला प्रश्न पर मजदूर वर्ग का दृष्टिकोण विषय भी एक पृथक विषय के रूप में शामिल किया जाना चाहिये।

सी आइ टी यू बनाम समन्वय समिति की भूमिका

अखिल भारतीय कामकाजी महिला समन्वय समिति के कार्य के दो दशक गुजर जाने के बाद भी विभिन्न स्तरों की सी आइ टी यू समितियों के मुकाबले कामकाजी महिला समितियों के दर्जे, भूमिका, उनके काम की प्रकृति आदि को लेकर सवाल उठाये जाते हैं। इन प्रश्नों की गिनती करने की बजाय इस संबंध में सी आइ टी यू की समझदारी को पुनः दोहराना उचित होगा।

अखिल भारतीय कामकाजी महिला समन्वय समिति, अपनी स्थापना के समय से ही अखिल भारतीय स्तर पर सी आइ टी यू की एक उपसमिति है। यह कोई अलग संगठन नहीं है। इसकी अलग सदस्यता या अलग संबद्धता शुल्क इत्यादि नहीं है। यही बात जहां जहां राज्य, जिला एवं फैडरेशन स्तरीय समितियां हैं वहां वहां उन पर भी लागू होती है।

यद्यपि सी आइ टी यू द्वारा वर्ष 1979 में आयोजित कामकाजी महिलाओं की

पहली अखिल भारतीय बैठक को ''कन्वेंशन'' का नाम दिया गया था तथापि उसके पश्चात् होने वाली सभी बैठकों को ''सम्मेलन'' कहा गया। इसी प्रकार कामकाजी महिलाओं की अखिल भारतीय समन्वय समिति की प्रमुख पदाधिकारी को ''सचिव'' का पद दिया गया, ''संयोजक'' का नहीं। हमने वर्षों से इसी कार्य प्रणाली को जारी रखा है। राज्यों में कामकाजी महिलाओं की समन्वय समिति की प्रमुख पदाधिकारी को केवल ''संयोजक'' का नाम दिया गया है। इस पर भी प्रश्न उठाए गए हैं। भले ही किसी भी पद नाम का उपयोग किया जाए किन्तु वस्तुतः समन्वय समिति केवल मात्र ''उप समिति'' ही बनी हुई है।

कामकाजी महिला समितियों के काम मोटे तौर पर इस प्रकार हैं :-

- ❒ कामकाजी महिलाओं की समस्याओं व उनके अधिकारों के संबंध में चेतना विकसित करना।
- ❒ कामकाजी महिलाओं के मुद्दों पर आम अभियान चलाना।
- ❒ आम मुद्दों पर सरकार एवं अन्य अधिकारियों को ज्ञापन सौंपना।
- ❒ विभिन्न महिला संगठनों व ट्रेड यूनियनों की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करना।
- ❒ आम संघर्षों में महिला मजदूरों को लामबंद करना।
- ❒ महिलाओं को ट्रेड यूनियनों में संगठित करना।
- ❒ अखबार, पुस्तिकायें व अन्य प्रकाशन।
- ❒ कामकाजी महिला कार्यकर्ताओं को शिक्षित एवं प्रशिक्षित कर उन्हें इस योग्य बनाना कि वे ट्रेड यूनियनों में जिम्मेदारी ले सकें।

जहां लक्षित कामगार महिलायें काम करती हों वहां इन सभी कामों की योजना बनाने से लेकर उन्हें लागू करने तक का काम संबंधित सी आइ टी यू समितियों की यूनियनों,बिरादराना यूनियनों, जहां जो स्थिति हो- की सक्रिय भागीदारी व मार्गदर्शन में किया जाना है।

विभिन्न स्तरों की समन्वय समितियों के फैसले उस स्तर की सी आइ टी यू समितियों को सूचित करते हुए उन्हीं के माध्यम से अमल में लाये जाने चाहिये। ऐसा करना न केवल संगठनात्मक रूप से उचित होगा बल्कि इससे सी आइ टी यू समितियों को इन फैसलों के प्रति अपने दायित्व का भी भान होगा और उनकी पूर्ण भागीदारी भी सुनिश्चित होगी। समन्वय समितियों के नाम से सर्कुलर जारी करने की

प्रथा के स्थान पर खुद सी आइ टी यू की ओर से सर्कुलर जारी किये जा सकते हैं।

कामकाजी महिला समन्वय समितियों से संबंधित एक और पहलू कुछ ऐसी महिला साथियों का इससे जुड़ाव है जो जिन उद्योगों/यूनियनों में काम करती हैं वे सीधे सी आइ टी यू से संबद्ध नहीं हैं। इनमें से अधिकांश कामरेड उन मध्यम वर्गीय कर्मचारी संगठनों से ताल्लुक रखती हैं जिनके सी आइ टी यू के साथ बिरादराना संबंध है।

जैसा कि बार बार दोहराया जा चुका है और इस आलेख में भी साफ तौर से स्पष्ट किया जा चुका है कि कामकाजी महिलाओं के मध्य हमारे काम का मकसद सर्वहारा के वर्ग संघर्ष को आगे बढ़ाने का है। इसलिये हमारा हमेशा मकसद रहेगा कि हम कामकाजी महिलाओं को संगठित करें तथा सी आइ टी यू से संबंद्ध यूनियनों में उनकी भरती करें। लेकिन हम ऐसे उद्योगों में जहां सी आइ टी यू यूनियनें नहीं हैं वहां अपने संपर्क में आई महिलाओं के आधार पर यूनियन बनाकर मौजूदा यूनियनों में फूट पैदा करना नहीं चाहते। इसके विपरीत ऐसे स्थानों पर समन्वय समितियां कामकाजी महिलाओं को अपनी अपनी यूनियनों में सक्रिय होने व नेतृत्वकारी भूमिका निबाहने के लिये प्रेरित करेंगी।

इसका मतलब यह हरगिज नहीं है कि उन महिलाओं की जो सी आइ टी यू से असंबंद्ध यूनियनों में हैं तथा हमारी समन्वय समितियों से जुड़ी हैं, की कोई भूमिका नहीं है। ये साथी अपनी अपनी यूनियनों में काम के समृद्ध अनुभवों के साथ आती हैं। इन महिलाओं के सामने आने वाली अड़चनें भी कारखानों और असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं की तुलना में काफी कम होती हैं। शिक्षा व प्रशिक्षण तक पहुंच में भी इनकी स्थिति बेहतर होती है। इसलिए ये कामकाजी महिलाओं को संगठित करने तथा समन्वय समितियों की कार्यप्रणाली को सुधारने में मदद कर सकती है। उनकी सेवाएं राज्य समितियों के लिये जबर्दस्त महत्व की हैं, खासतौर से तब जब कि हमारी यूनियनों में इस तरह की सक्षम महिला कार्यकर्ताओं की कमी है जो समन्वय समितियों का काम संचालित कर सकें।

लेकिन कमजोरी यह है कि सी आइ टी यू समितियां ऐसी साथियों का उपयोग, सी आइ टी यू से संबंद्ध यूनियनों के सांगठनिक काम या ऐसे क्षेत्र जहां से महिलाओं को सी आइ टी यू में लाया जा सके वहां के काम में, नहीं करती। इस उपयोग के न होने से इन साथियों का सी आइ टी यू के साथ एकीकरण नहीं हो पाता। इनका काम सिर्फ समन्वय समितियों की बैठकों एवं आम अभियानों में

शामिल होने तथा प्रतिनिधि मंडलों आदि में जाने तक ही सीमित रह जाता है। इसके चलते कुछ स्थानों पर समन्वय समितियों के अंदर सी आइ टी यू की महिलाओं तथा गैर सी आइ टी यू महिलाओं या मजदूर महिलाओं और कर्मचारी महिलाओं जैसा असामान्य विभाजन पैदा हो जाता है। यहां जोर देकर कहा जाना चाहिये कि ये स्थितियां महिला साथियों द्वारा उत्पन्न की गई स्थितियां नहीं हैं। यह स्थिति इन साथियों को कौशलता के साथ काम देते हुये इन्हें सी आइ टी यू कार्यकर्ताओं के रूप में विकसित कर पाने में संबंधित सी आइ टी यू समितियों की विफलता की वजह से उत्पन्न होती है।

इसके चलते जहां समन्वय समितियां सी आइ टी यू से दूर रहती हैं वहां एक खाई सी पैदा हो जाती है। बजाये इसे सी आइ टी यू के सांगठनिक ढांचे का ही हिस्सा समझने के सी आइ टी यू नेता इसे एक पुछल्ला, अलग या समानांतर संगठन मान लेते हैं। यह कृत्रिम विलगाव खत्म हो सी आइ टी यू समितियों को यह सुनिश्चित करना चाहिये। यह भी सी आइ टी यूसमितियों का दायित्व है कि वे कामकाजी महिला समन्वय समितियों में काम करने वाली साथियों के यात्रा व्यय सहित अन्य सभी आवश्यक खर्चों को उठायें।

समन्वय समितियां अपने काम के तहत बैंक, बीमा, सरकारी महकमों, नर्स, शिक्षिका आदि महिला कर्मचारियों के मुद्दे भी उठाती हैं। इससे सबंद्धताओं को दरकिनार करते हुये उन्हें ट्रेड यूनियन गतिविधियों से जोड़ने में सफलता मिलती है। यह एक स्वस्थ रुझान है तथा इसे जारी रखने की जरूरत है। किंतु कई बार हमारी समन्वय समितियां यह तर्क लेकर आती हैं कि यदि हम सी आइ टी यू का लेबल हटा दें तो इन हिस्सों में हमारे काम को और ताकत मिल सकती है। यह गलत रुझान है। इन तबकों में हमारा काम कोई दया के लिये नहीं। भले ही हम जानते हैं कि ये महिलायें सांगठनिक रूप से सी आइ टी यू के साथ नहीं आ सकेंगी किंतु हमारी कोशिश होनी चाहिये कि वे कम से कम वैचारिक रूप से तो सी आइ टी यू के नजदीक आएं। अगर यह उद्देश्य पूरा नहीं होता तो हमारा काम एक तरह से अराजनीतिक गतिविधि बनकर रह जायेगा। इसलिए समन्वय समितियों में काम करने वाली हमारी साथियों को गैर सी आइ टी यू पहचान जैसे तर्कों को छोड़कर, जहां भी वे कार्यरत हैं वहां सी आइ टी यू के संदेश को ले जाने का काम करना चाहिये।

अंतिम विश्लेषण में कामकाजी महिला समितियों व सी आइ टी यू समितियों के रिश्तों को लेकर उठे सारे प्रश्न और संदेह सी आइ टी यू समितियों द्वारा कामकाजी

महिला समन्वय समितियों पर अपना अधिकार न समझे जाने तथा कामकाजी महिला समन्वय समितियों में सी आइ टी यू के साथ अपनी पहचान के संबंध में भ्रमपूर्ण विचारों की वजह से है।

अलग थलग रहने का रुख

ट्रेड यूनियनों के हमारे कुछ पुरुष साथी शिकायत करते हैं कि कामकाजी महिलाएं घरेलू जिम्मेदारियों के नाम पर गेट मीटिंगों, प्रदर्शनों तथा यूनियन की जनरल बॉडी बैठकों में शामिल नहीं होतीं। यह ठीक है कि वे यूनियन की सदस्यता लेती हैं लेकिन बाकी सब मामलों में निष्क्रिय दर्शक बनी रहती हैं। इस प्रकार वे एक तरीके से अलग थलग बने रहने का रुख अपनाती हैं। यही कहा जाता है।

हमारे साथियों को आत्मावलोकन करना चाहिये कि क्या महिला सदस्यों के अलग थलग रहने के रुख के बारे में उनकी शिकायत वास्तविक है? असल में तमाम संघर्षो के हमारे तजुर्बे क्या हैं ? जलूसों, प्रदर्शनों, धरनों, पिकेटिंग, बैरीकेट फांदने, आदि इत्यादि आंदोलनों में हमारे साथी हमेशा महिलाओं को अगले मोर्चे पर रखते हैं। इससे भी इन्कार नहीं है कि पुलिस अत्याचार का मुकाबला करते हुए वे उदाहरण योग्य बहादुरी का भी प्रदर्शन करती हैं। फिर यह शिकायत क्यों है कि ऐसी आगे आने वाली महिलाओं की संख्या काफी कम है।

कामरेड बी टी रणदिवे ने 1987 में सी आइ टी यू के छटे सम्मेलन के अपने अध्यक्षीय भाषण में नियोजकों और सरकारों द्वारा कामकाजी महिलाओं के प्रति अपनाई जा रही पक्षपातपूर्ण नीतियों का जिक्र किया था। उन्होंने कामकाजी महिलाओं एवं उनकी समस्याओं के प्रति ट्रेड यूनियन नेताओं के सौतेली मां जैसे (क्या हम इसे सौतेले पिता जैसा कहें?) रवैये की भी निंदा की थी। उन्होंने कहा था कि :-

''ट्रेड यूनियन गतिविधियों में महिलाओं की अप्रभावी हिस्सेदारी तथा यूनियनों के प्रमुख पदों तक पहुंच पाने में उनकी विफलता के लिये यही रवैया जिम्मेदार है।''

इसलिए यह देखना चाहिये कि हमारे जो साथी महिलाओं के अलग थलग खड़े रहने की शिकायत करते हैं, अगर ऐसा कहीं है भी तो भी, कहीं वे कारण को ''प्रभाव'' से गड्ड-मड्ड तो नहीं कर रहे हैं।

इसी के साथ क्या यह भी सही नहीं है कि यूनियन के सभी कार्यक्रमों में हिस्सा लेने वाले यूनियन के पुरुष सदस्यों का भी प्रतिशत कितना मामूली है। हमने

जनवादी कार्यप्रणाली के अंतर्गत सी आइ टी यू में ट्रेड यूनियन की नीति संबंधी मसलों पर फैसले लेने सहित सभी गतिविधियों में साधारण मजदूर की भागीदारी पर काफी जोर दिया है। बिना किसी अपवाद के यही बात यूनियन की महिला सदस्यों पर भी लागू होती है।

अगर कुछ इलाकों में जहां महिला श्रमिक शुरूआती हिचकिचाहट प्रदर्शित भी करती हैं तो क्या हमारे साथियों को जानना नहीं चाहिये कि ऐसा क्यों हो रहा है ? इस कहानी का दूसरा पहलू भी है कि महिला श्रमिक शिकायत करती हैं कि हमारे नेता चाहते हैं कि हम यूनियन के आंदोलनों में हिस्सेदारी करें मगर जब हमारी मांगों का सवाल आता है तो वे उन्हें नहीं उठाते।'' ''मीटिंगों में महिलाओं को लाने के लिये तो अक्सर कहा जाता है मगर ऐसा कभी कभार ही होता है जब हमसे बोलने के लिये भी कहा जाये।'' ''प्रदर्शनों वगैरा में तो हमसे आगे रहने या बैठने के लिये कहा जाता है मगर जब समझौता वार्ताओं में जाने का वक्त आता है तो हमें कोई बुलाने नहीं आता।'' पुलिस पिकेट के सामने बैठकर धरना देने के लिये तो हमें यहां तक कि हमारे बच्चों के साथ भी बुला लिया जायेगा। मगर जब सम्मेलन होंगे तो हमें ले जाने की याद किसी को नहीं रहती।'' आदि आदि।

इन दोनों प्रकार की शिकायतों में सच्चाई है। मगर यह पूरा सच नहीं है।

हमें याद रखना चाहिये कि जिन महिला श्रमिकों से हम संपर्क करते हैं वे हमारे वर्ग के सबसे पिछड़े हिस्से में है और यह उन्होंने चुना नहीं है बल्कि ऐतिहासिक परिस्थितियों के चलते ऐसा हुआ है। हम उन महिलाओं का विश्वास जीतना चाहते हैं जिन्हें पुरुष के प्रभुत्व, मालिकों की शक्ति और समूची पूंजीवादी व्यवस्था ने युगों तक कुचला है, गुलाम बना कर शोषण किया है।

इसलिए समाज के क्रांतिकारी परिवर्तन हेतु संघर्ष में अपने आप शामिल होना तो दूर ऐसी महिला श्रमिकों का बड़ा हिस्सा स्वयं ही ट्रेड यूनियन गतिविधियों में भाग लेने भी आ जायेगा - यह समझना भोलापन होगा। सिर्फ मेहनतकशों की आम मांगों को ही दोहराते रहने से तो इन्हें संघर्ष के मैदान में उतार पाना मुमकिन नहीं है। कामकाजी महिलाओं की तकलीफों , आवश्यकताओं और इच्छाओं के साथ जोड़कर ही हम अपनी अपील को उनके दिमाग तक पहुंचा पायेंगे। हमें मौजूदा परिस्थितियों और मजदूर वर्ग के आम हितों को जोड़ते हुए, महिलाओं की मांगों को लेकर भी संघर्ष करना चाहिये। यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है और श्रमिक वर्ग के सामान्य हितों के अनुरूप अथवा सम्पूर्ण वर्ग को साथ लेकर ही ये संघर्ष किये जा सकते हैं या किये जाने चाहियें।

ट्रेड यूनियन आंदोलन व अन्य गतिविधियों में महिला श्रमिकों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने के लिये सबसे पहली जरूरत तो यह है कि हम उन्हें अपनी समस्याएं सही तरीके से प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करें। हम उनमें यह विश्वास भरें कि ट्रेड यूनियन गतिविधियों में हिस्सा लेने से उन्हें न सिर्फ अपनी परेशानियां रखने का अवसर मिलेगा बल्कि उनके समाधान के लिये भी यूनियन प्रयत्न करेगी। ट्रेड यूनियन नेतृत्व सिर्फ यह सुनिश्चित ही न करे कि महिलाओं की मांगों के साथ न्याय होगा बल्कि महिलाओं को यह अनुभव भी कराये कि वास्तव में न्याय हो रहा है।

कामकाजी महिलाएं प्राय: शारीरिक कारणों से श्रमिक संघों में सक्रिय भूमिका निभा नहीं पातीं। पुरुष सहयोगियों का रुख उनके लिये और भी बाधक बन जाता है। श्रमिक संघों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को बढ़ाने के लिये सभी साथियों को सकारात्मक रुख अपनाना चाहिये और इसके लिये चेतन प्रयास किये जाने चाहियें। कामकाजी महिलाओं के परिवार के पुरुष सदस्यों को भी उनके घरेलू दायित्वों को पूरा करने के लिये सहयोग देना चाहिये ताकि वे श्रमिक संघ में सक्रिय होकर काम कर सकें।

कुछ क्षेत्र जहां तत्काल और विशेष ध्यान दिया जाना जरूरी है, इस प्रकार है:

- ❒ यूनियन एवं सी आइ टी यू की समितियों में महिलाओं को शामिल किया जाना।
- ❒ महिलाओं को पदाधिकारी के रूप में पदोन्नत किया जाना।
- ❒ समझौता समितियों में महिलाओं को प्रतिनिधित्व दिया जाना।
- ❒ सम्मेलन के प्रतिनिधि मंडलों में महिलाओं को शामिल किया जाना।

इन पहलुओं पर जब तक सचेतन प्रयास नहीं होंगे तब तक मौजूदा अवरोध पर काबू नहीं पाया जा सकता।

कामकाजी महिलाओं –विशेषकर समन्वय समितियों में काम करने वाली साथियों – के लिये यह याद रखना अनिवार्य है कि सिर्फ महिलाओं की मांगें अकेले कोई एजेण्डा नहीं है। यह ट्रेड यूनियन आंदोलन के एजेंडे का ही अविभाज्य अंग है। उनकी मांगों को सभी हिस्सों के मजदूरों की आम मांगों के साथ जोड़कर ही आगे बढ़ाया जा सकता है।

हम उन्हें नारी प्रश्नों पर अब तक का सबसे बहुमूल्य योगदान मानी जाने

वाली पुस्तक ''महिला: भूत, वर्तमान और भविष्य'' के रचयिता आगस्ट बेबेल की याद दिलाना चाहेंगे । उन्होंने कहा था कि :-

''जिस संघर्ष में खुद उनकी आजादी और उपलब्धियां दांव पर लगी हों ऐसे संघर्ष में बुलाये जाते ही महिलाओं को भी पीछे नहीं रहना चाहिये। अब यह उनका जिम्मा है कि वे साबित करें कि आंदोलन में अपनी वास्तविक स्थिति उन्होंने समझ ली है और वे सुखद भविष्य के लिये जारी मौजूदा मुकाबले में अपनी भूमिका निबाहने के लिये संकल्पबद्ध हैं। यह पुरुषों की जिम्मेदारी है कि वह उन्हें सारे पूर्वाग्रहों से मुक्त होने में मदद करें तथा संघर्ष में सहयोग दें।''

निष्कर्ष रूप में कामकाजी महिला साथियों को यह साफ समझ लेना होगा कि सब कहने सुनने के बाद इस मोर्चे की प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि वे खुद कितनी दृढ़ता के साथ पहल करती हैं। मौजूदा दौर की चुनौतियों और कार्यभारों से जूझ रही हमारी सी आइ टी यू की समितियां, यूनियनों और फैडरेशनों के नेताओं की नजरों से, कामकाजी महिलाओं के मकसद के प्रति अपनी तमाम गंभीरताओं व चिंताओं के बावजूद, प्राथमिकताएं ओझल होने की संभावनायें हैं क्योंकि उन्हें वर्तमान की अनेकानेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है और अनेक सांगठनिक कार्य करने पड़ते हैं। यह उन्हें दोषमुक्त घोषित करने के लिये नहीं कहा जा रहा बल्कि यह रेखांकित करने के लिये कहा जा रहा है कि साथियों को अपने संगठन के भीतर अपनी अथक लड़ाई जारी रखनी चाहिए।

इसी तरह लेनिन ने अपने समय की महिलाओं को प्रेरित किया था। महिलाओं के प्रश्न पर आयोजित विश्व कांग्रेस में आई महिलाओं से उन्होंने कहा था कि :-

गप्प गोष्ठियों की तरह चहको मत, जोर से बोलो। सम्मेलन कोई श्रृंगार घर नहीं है, जैसा कि हम उपन्यासों में पढ़ते हैं, जहां महिला अपने आकर्षण का प्रदर्शन करे। सम्मेलन एक रणक्षेत्र है जहां हम अपनी क्रांतिकारी कार्यवाहियों के लिये जरूरी ज्ञान हासिल करने के लिए लड़ाई लड़ते हैं। दिखा दो कि तुम लड़ सकती हो। सबसे पहले, निस्संदेह हमारे दुश्मनों से, मगर अगर जरूरत पड़े ..... तो अपने अंदर भी!

सी आइ टी यू में हमें न केवल यह सुनिश्चित करना है कि महिलाएं बोलें और दृढ़ता से अपनी बात रखें बल्कि अपने सभी नेताओं व कार्यकर्ताओं को इस विषय पर सही वर्गीय नजरिये से भी लैस करना है। आइये हम सभी अपने कामों को उनकी प्राथमिकता और आवश्यकता के अनुरूप, सही दिशा व भावना से लागू करें।

अप्रैल, 2001

मूल्य : 15 रुपये

एम के पंधे द्वारा सेंटर ऑफ इंडियन ट्रेड यूनियन्स्,
बी. टी. आर. भवन, 13-ए, रॉउज़ एवेन्यू, नयी दिल्ली-110002
के लिए प्रकाशित.

प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स,
ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया,
जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-95
से मुद्रित